



JAHNAVI SANSKRIT E-JOURNAL

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refreed UGC Approved Sanskrit Tri-lingual Journal]

A portal of Sarasvatniketanam

त्रयस्त्रिंशो अङ्के भवतां समेषां मङ्गलाभिनन्दनम्।



www.sarasvatniketanam.org , www.jahnvisanskritejournal.in

मुख्यसम्पादकः	विद्यावाचस्पति-डा.सदानन्दझा ।
पुनर्वीक्षकाः	डा. अशोकचन्द्रगौडशास्त्री, डा. त्रिलोकझा, डा. अनिलप्रतापगिरिः ।
विशिष्टपुनर्वीक्षकाः	Dr. PK Wendabona, Department of Basic Principles, Institute of Indigenous Medicine University of Colombo, Rajagiriya Sri Lanka
सम्पादकाः	डा. श्रीनाथधरद्विवेदी, डा. जगदीशनारायण तिवारी, डा. विपिनकुमारझा ।
प्रकाशकः	डा. विपिनकुमारझा ।
प्रकाशन-सम्पादनसहायकाः	डा. सुमनदीक्षित, डा. सरिताश्रीवास्तव ।
प्रतिनिधयः (लोकार्पणसन्दर्भे)	डा. जगदीशनारायण तिवारी
तकनीकीप्रबन्धनसहायकः	रित्ज़ बेब होस्टिंग, बंगलोर।

सारस्वत-निकेतनाख्या संस्कृतसेवासरणिः पूज्यगुरुपादैः कीर्तिशेषैः राष्ट्रप्रीतिपुरस्कृतैः देवानन्दझावर्यैः प्रातस्मरणीयैः स्वनामधन्यैः राष्ट्रप्रीतिपुरस्कृतैः तुलानन्दापरनामनारायणझावर्यैश्च उद्घाटिता विद्यावाचस्पत्युपाधिभाक्-सदानन्दझाऽनुगता एषा सरणिः विपिनझाद्वारा संस्कृतानुरागिसहयोगैः विविधेषु रूपेषु संस्कृतप्रचार-प्रसाराय सन्नद्धा वर्तते तेषु रूपेषु एवायं प्रबन्धः जाह्नवी संस्कृत ई जर्नलनाम्ना विश्वेऽस्मिन् प्रथितः।

JAHNAVI-A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refreed UGC Approved Sanskrit Tri-lingual (Sanskrit, Hindi & English) Journal with Impact Factor.

विषयानुक्रमणिका

I	प्रस्फुटम्	
1	सम्पादकीयम्	विद्यावाचस्पतिः डा. सदानन्दझा
2	प्रकाशकीयम्	डा. विपिनकुमारझा
II.A	साहित्यानुसाराः	
1	भारतीय संस्कृति के पोषक तत्त्व : भाषा एवं धर्म	सतीश कुमार सिंह
2	अवरोहभिक्रमः शृङ्खलाभिक्रमः मैथेटिक्स् अभिक्रमः वा	सत्यदेवः
3	चन्द्रप्रभचरितस्य महाकाव्यत्वम्	चाँदनी
4	संस्कृताध्ययनाध्यापनस्य प्रासङ्गिकता	सुनीलकुमारठाकुरः
5	जातकपारिजातस्य समीक्षात्मकमध्ययनम्	कार्तिककुमारः
6	साम्प्रतिककाले ज्योतिषशास्त्रस्योपयोगिता	कृष्णकुमारमिश्रः
7	ग्रहमैत्रीविचारः	सत्यानन्दझा
8	औपनिषद अद्वैत विमर्श	वेदव्रत
9	धर्मविजयनाटके ध्वनिसौन्दर्यम्	नम्रताउपाध्यायः
10	शिक्षण प्रक्रिया में योग	प्रदीप कुमार झा
11	बिहार के महान् वैज्ञानिक आर्यभट्ट	रतीशकुमारझा
12	उपनिषत्सु नैतिकमूल्यानि	सच्चिदानन्द सेही
13	वैयाकरणनये व्यापारस्वरूपविमर्शः	रामबाबूपाण्डेयः
14	दर्शनशास्त्रशिक्षणे ह्युरिस्टिक्-विधिः	जितेन्द्रकुमाररायगुरुः

प्रस्फुटम्

सम्पादकीयम्



विद्यावाचस्पति डॉ. सदानन्द झा¹

शिवशिरसि वसन्ती संविदानन्दनीरा
हृदय कलुषपुञ्जं प्रक्षिपन्ती विदूरे
सघन तमसि दिव्यं ज्योतिरालोकयन्ती
प्रसरतु भुवि भव्या जाह्नवी काऽपिधन्या ॥

अये श्रीमन्तः सुरसरस्वतीखेहसम्भृतस्वान्ताः शास्त्रविचारपरिशीलनलब्धजनाः भारतीयसंस्कृति
सेवासमाराधनरताः सहृदयाः शास्त्रसमुत्थसुधारसास्वादकुशलाः गुणैकपक्षपातिनः
देवभाषाकमलानुरागिणः पाठकाश्च।

विश्वस्य प्रथमान्तर्जालीयसंस्कृतत्रैमासिकजाह्नवीपत्रिकायास्त्रिंशदङ्कमिमं साम्प्रतं
दृष्टिगृहीणीसपर्यारतानां विद्वद्गणां सकलशास्त्रनिष्णातानां नयैकबद्धपक्षपातिनां
संस्कृतसमाराधनतत्परणामाचार्याणां करकमलयोः ई माध्यमेन पत्रिकामिमं सादरं समर्पयन्नमन्दानन्दं
लेभे।

अस्याः पत्रिकायाः प्रारम्भकालादेव संस्कृतप्रचारप्रसाराय देशे-विदेशे लोकार्पणकार्यक्रमः
निर्धारितः तदर्थं प्रस्तुताङ्कस्य लोकार्पणकार्यक्रमः विविधप्राशासनिककार्यक्रमव्यस्तैरपि आचार्यचरणैः
स्वनामधन्यैः नयैकपक्षपातिभिः श्रीमद्भिः प्रो. यदुनाथदूबेमहोदयैः जाह्नव्याः लोकार्पणकृते
स्वीयाकृपानुमतिः प्रदत्तास्ति अतस्तेभ्यः आचार्यप्रवरेभ्यः साञ्जलिशिरसा आभारं प्रकटयति समस्त
जाह्नवी परिवारः ।

यद्यपि जानन्त्येव शास्त्रसिकाः संस्कृतपत्रिकायाः प्रकाशनकार्यमतीव दुष्करं भवति यथैव
मणिमण्डितव्यालस्य परिष्करणम्। तथापि देशे-विदेशे ख्यातिलब्धविदुषामाचार्याणां साहाय्येन
सत्परामर्शेन च सन्ततं सारस्वतरंगस्थले जाह्नवीपत्रिका नरीनृत्यमानाऽस्मद् विचारं परिपोषयति।

¹ पत्रिकायाः मुख्यसम्पादकः।

इदानीमनेकाः पत्रिका विश्वविद्यालयानुदानायोगेन नियमपरिनियमकारणवशात् मनाकसूचीतः बहिर्गताः। किन्तु पत्रिकेयं निरन्तरं विश्वविद्यालयानुदानायोगेन सम्पोषिता अनुमोदिता चेति विदित्वा मोमुदतीति नश्चेतः।

यद्यपि प्रस्तुतांके नानाप्राप्तेभ्यः समागताः शास्त्रीयशोधनिबन्धा परमोपादेयास्तथापि 'भारतीय संस्कृति के पोषक तत्त्व : भाषा एवं धर्म, अवरोह्यभिक्रमः शृङ्खलाभिक्रमः मैथेटिक्स् अभिक्रमः वा, चन्द्रप्रभचरितस्य महाकाव्यत्वम्, जातकपारिजातस्य समीक्षात्मकमध्ययनम्' इत्यादयः उत्कृष्टास्सन्ति।

येषां विदुषां निबन्धा अत्र संगृहीताः सन्ति ते सर्वे नानाशास्त्राणां प्रख्याताः विद्वांसं विद्यन्ते। अतस्तान् सुधीवरान् लेखसहयोगार्थं साञ्जलिं स्तोतुमीहन्ते जाह्नवीपरिवाराः। लेखानां समेषां सम्पादनं सपरिष्कारं भूरिपरिश्रमेणकृतं किन्तु मुनीनामपि भ्रमो जायते का कथा अस्मदादीनामेतदर्थं सादरं त्रुटिनिमित्तकं क्षमां याचे।

आशासे पत्रिकेयं संस्कृतसाहित्यसेवकैः विद्वद्भिश्च नूनं समादृता भविष्यति। पार्वतीजानिकृपया जायतां पत्रिकेयं सुरभारतीप्रसाराय संस्कृतगंभीरशास्त्रपरिरक्षणाय भारतीयसंस्कृतिरक्षणाय जगन्मंगलायेति।

श्रुतिध्वनिमनोहरा मधुरसा शुभा पावनी
स्मृताप्यतनुतापहृत् समवगाहसौख्यप्रदा।
निषेव्यपदपङ्कजा विवुधवृन्दमान्याऽमला
समस्तजगतीतले प्रवहतादियं जाह्नवी

विद्वच्चरणचञ्चरीकः

ज्ञोपाख्यः सदानन्दः

लखनौरम, विहारः

22.05.2018

प्रकाशकीयम्



डा. विपिनकुमारझा²

गलेभुजगसन्ततिः शिरशि यस्य बालोद्यु

र्विभाति वरमस्तके सुरधुनी प्रवाहो महान्।

अशेषफलदायकः श्रुतिनुतः कुमारप्रियो

ददातु मम वाञ्छितं फलमुदारचित्तः शिवः ॥

वैदिककाले आसीत् या शिक्षणव्यवस्था तदपेक्षया आधुनिकीयं शिक्षणव्यवस्था उत्कृष्टेति वदन्ति अर्वाचीनपण्डिताः किन्तु मिथ्येदम्। यतो हि तस्मिन् काले शिष्याणां गुरुं प्रति अनिर्वचनीया श्रद्धा तथा गुरूणां शिष्यान् प्रति आसीत् अतिशयप्रेम। उभावपि परस्परं सम्मिल्य शिक्षणव्यवस्थां सश्रद्धं सम्पादयत स्म।

वैदिक परम्परा सुरक्षायै सर्वेऽपि प्राणपरेण यतमानाः आसन्। योग्यानां शिष्याणाम् एव यथोचिता नियुक्तिरासीत् गुरुकुलेषु। छलच्छद्महीनैः एभिः सरस्वती समुपासकैः शिक्षणव्यवस्था आसीत् शिखरारूढा अत एव भारतं विश्वगुरुपदमलंकरोति स्म।

अद्य नियुक्तिप्रक्रियायां सम्बन्धविशेषस्य दृश्यते विशेष्यता। सम्बन्धसामान्यं विशेषणं भवति अतः ज्ञानसम्बन्धापेक्षया यत्र सम्बन्धमात्रस्योत्कृष्टता भवति तादृशे आधुनिकेऽस्मिन् काले कथं शिक्षणव्यवस्था उत्कृष्टेति मनः शङ्कापङ्कावलेपलेपितमस्ति। अतः तां शिखरारूढां वैदिकपरम्परां पुनरवाप्तुं यतमानैः सा जाह्नवी पत्रिका तत्र भवतां भवतां पुरस्तात् समुपस्थाप्य अमन्दमानन्दमनुभवामि यत्र ज्ञानसम्बन्ध एव भवति विशेषः। अंकेऽस्मिन् यदि कापि त्रुटिः दृष्टिपथि समागच्छेत् तर्हि सा सूचनीया क्षन्तव्या च। सारस्वतकर्मण्येऽस्मिन् ये महामान्याः सुविज्ञाः पण्डिताः

² प्रकाशकः सम्पादकश्च

साहाय्येन सनाथीकृतवन्तः तेभ्यः महानुभावेभ्यः प्रणतिपूर्वकं प्रणामाञ्जलिमर्पयामि । अन्येभ्यस्सहायकेभ्यः
वाग्व्यापारैः भूयोभूयः धन्यवादान् व्याहृत्य भगवन्तमुपास्यदेवं सम्प्रार्थ्य विस्तरात् विरमामि ।

भवदीयः

विपिनकुमारझा

विश्वजैवविधितादिवसः

विश्वनाथनगरी, वाराणसी

साहित्यानुरागः

भारतीय संस्कृति के पोषक तत्व : भाषा एवं धर्म

सतीश कुमार सिंह³

कूटशब्द- भाषा, प्रकृति, मानवसमुदाय, पर्यावरण, संस्कृति।

शोधसार

भाषा वह कारक है जो मानव को जैविक मानव से सांस्कृतिक मानव में रूपान्तरित करता है तथा इसे प्रौद्योगिकीय एवं आर्थिक सक्षमता प्रदान करता है। विश्व के प्रत्येक मानव समुदाय की अपनी विशिष्ट भाषा एवं संस्कृति के कारण प्रत्येक मानव समुदाय एवं समाज की अपनी विशिष्ट जीवन शैली है, जिसे *सभ्यता* कहते हैं। भाषा का उदभव एवं विकास प्रकृति एवं पर्यावरण के सापेक्ष हुआ है। आज सम्पूर्ण विश्व में अनेक भाषा परिवार में विविध प्रकार की भाषा है तथा सभी की अपनी विशिष्ट संस्कृति है। किसी एक प्राकृतिक परिवेश में सांस्कृतिक विविधता के कारण संस्कृतियों के पारस्परिक समन्वयन से संस्कृति की ऐसी विशेषता का उदय हुआ, जिसमें एक ही प्राकृतिक परिवेश में विशिष्ट स्तर पर अनेक प्रकार की संस्कृतियों के बावजूद समस्त प्राकृतिक परिवेश के लिये सामान्य सांस्कृतिक अभिलक्षण विकसित हुये। जिसे व्यवहारिक सन्दर्भ में *यूनिटी इन डाइवर्सिटी (एकता में विविधता)* जैसी संज्ञा प्रदान की जाती है। इसका सर्वाधिक आदर्श प्रतिरूप भारत में विकसित हुआ है। भारत में संस्कृति की इस प्रकार की विशिष्टता इसे विकास के आर्थिक सन्दर्भों में सर्वाधिक सक्षम बनाती है। संस्कृति का संगठन अथवा संयोजन भाषा, विचार अथवा चिंतन, ज्ञान, परंपरा तथा धर्म के पारस्परिक समन्वय से होता है तथा यह किसी व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व को निर्धारित करती है। इसी से व्यक्ति के अंदर समाज एवं राष्ट्र सापेक्ष सांस्कृतिक मूल्यों का निर्माण होता है। व्यक्ति विद्वानों में संस्कृति का संवर्द्धन ही व्यक्ति के परिदृष्टि का विकास करता है। यह परिदृष्टि उसे प्रकृति और समाज के प्रति चेतना प्रदान करती है। मानव एक संस्कृतिशील प्राणी है, इसी कारण यह समाज, राष्ट्र एवं राज्य का निर्माण करने में सक्षम हुआ है; जिसमें मानव जीवन निरंतर उत्कर्ष की ओर गतिशील हो रहा है। संस्कृति, देश, काल, एवं परिस्थिति के सापेक्ष धर्म के माध्यम से ही व्यक्ति अथवा समाज में जीवनशैली के रूप में व्यवहृत होती है। धर्म, संस्कृति का वह क्रियात्मक रूपरूप है जो व्यक्ति को समाज, पर्यावरण एवं समय के सापेक्ष संवेदनशीलता और चैतन्यता प्रदान करता है। धर्म प्रकृति एवं समाज के सापेक्ष हमारे जीवन का अनुशासन है। यह हमें प्रकृति अथवा समाज के प्रति उत्तरदायित्व का बोध कराता है। वस्तुतः धर्म ही हमें वह अन्तर्दृष्टि देता है। धर्म के सृजन का आधार तत्व भाषा है। विश्व के विभिन्न भागों में जैसे-जैसे भाषा की उत्पत्ति तथा उसका विकास हुआ, वहाँ के समाज में धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। धर्म से अनुशासित समाज, प्रकृति सापेक्ष एवं प्रकृति पोषित समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से अनेक रूपों में क्रियाशील होने लगा, जिससे जीवन की भौतिक और सांस्कृतिक गुणात्मकता निरन्तर उत्कृष्ट होती गई। ये समय के साथ अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग सभ्यता के रूप में प्रतिबिम्बित हुआ। भारत विश्व में भाषाई तथा सांस्कृतिक रूप में सर्वाधिक विविधता युक्त देश है। इसके इस स्वरूप का सृजन और पोषण यहाँ के विविधता युक्त पर्यावरण ने किया है। भारत की सांस्कृतिक विविधता, विकास सक्षमता की पोषक है। अतः प्रत्येक प्रदेश के विकास (आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरणीय विकास) के लिये धर्म की अपरिहार्यता अथवा प्रासंगिकता स्वतः सिद्ध है। 'पंथ' वह विश्वास तथा

³ भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

आस्था है, जिसे कोई व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का समूह किसी अन्य धर्म अथवा व्यक्ति के प्रति आकर्षण अथवा प्रभाव से अपनाता है। धार्मिक मान्यतायें, विश्वास, पंथ के रूप में व्यवहृत होते हैं। 'पंथ निरपेक्षता' से आशय राज्य के अपने देश के नागरिकों के प्रति उस दृष्टिकोण से है जिसमें राज्य अपने क्रियात्मक व्यवहार में किसी धर्म, पंथ, विश्वास या आस्था के प्रति आग्रह का निषेध करता है। भारतीय संविधान की उद्देशिका एवं प्रस्तावना में 'पंथनिरपेक्ष' शब्द को शामिल किया गया है। ऐसा करके भारत ने एक ओर अपनी सांस्कृतिक विरासत की अभिरक्षा की है, तो दूसरी ओर सांस्कृतिक संवर्धन के लिये देश के सभी धर्म एवं पंथ को विकास करने की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की है। आज देश विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा अर्थव्यवस्था में सतत् गतिशील है और निरन्तर समृद्ध होता जा रहा है। इस विकास के पीछे देश के विभिन्न संस्कृतियों की उस मूल चेतना की भूमिका है, जो हमें परिकल्पनात्मक स्तर पर प्रखर बनाती है तथा सैद्धान्तिक और व्यवहारिक स्तर पर प्रगतिशील बनाती है।

'भाषा' संस्कृति एवं सभ्यता का सृजन तत्व

मनुष्य की सबसे बड़ी उपलब्धि भाषा की व्युत्पत्ति और विकास है। भाषा वह कारक है जो मानव को जैविक मानव से सांस्कृतिक मानव में रूपान्तरित करता है तथा इसे प्रौद्योगिकी सक्षम बनाकर आर्थिक कारक बनाता है। मानव के भौतिक रूप से सांस्कृतिक रूप में रूपान्तरण की ये प्रक्रिया क्रमशः विचार अथवा चिन्तन, ज्ञान, परम्परा एवं धर्म के रूप में होती है।

इस प्रकार विश्व के प्रत्येक मानव समुदाय की अपनी विशिष्ट भाषा के कारण विशिष्ट संस्कृति होती है। संस्कृति की देश काल परिस्थिति के सापेक्ष प्रत्येक मानव समुदाय की जीवन शैली, रहन-सहन तथा उसके जीवन स्तर के रूप में परिलक्षित होती है। इस प्रकार प्रत्येक संस्कृति मानव समुदाय एवं समाज में एक विशिष्ट जीवन शैली का विकास करती है। जिसे *सभ्यता* कहते हैं। स्पष्ट है कि भाषा, संस्कृति के उदभव का कारक है; जबकि संस्कृति, सभ्यता के सृजन का कारक है। अर्थात् प्रत्येक सभ्यता की अपनी विशिष्ट संस्कृति तथा प्रत्येक संस्कृति की अपनी विशिष्ट भाषा होती है। अन्य शब्दों में भाषा वर्तमान आधुनिक सभ्यता के उदभव की मौलिक इकाई है, जबकि संस्कृति वर्तमान आधुनिक सभ्यता की प्रकृति का कारक है। अर्थात् संस्कृति ही सभ्यता की निर्धारक है।

भाषा का उदभव एवं विकास प्रकृति एवं पर्यावरण के सापेक्ष हुआ है। भाषा के अविष्कार की मौलिक उत्प्रेरक प्रकृति रही है। विश्व में प्राकृतिक पर्यावरण में विविधता के कारण तथा मानव समुदाय की अपेक्षाकृत कम प्रवाहशीलता के कारण स्थानबद्ध या क्षेत्रबद्ध प्रकृति के अनुरूप भाषा का क्षेत्रीय प्रतिरूप कालक्रम के साथ विकसित हुआ। इस प्रकार समय के साथ प्रत्येक प्राकृतिक परिवेश की विशिष्ट भाषा और संस्कृति का विकास हो गया और इस प्रकार विश्व में सांस्कृतिक विविधता का उदभव और विकास हुआ। आज सम्पूर्ण विश्व में अनेक भाषा परिवार में विविध प्रकार की भाषा है। सभी प्रकार की भाषा की अपनी विशिष्ट संस्कृति है। सभ्यता के विकास के आरम्भिक चरण में प्रत्येक भाषा की अपनी विशिष्ट संस्कृति थी तथा प्रत्येक संस्कृति की अपनी विशिष्ट प्रकृति थी। लेकिन जैसे-जैसे मानव आर्थिक दृष्टि से सशक्त होता गया, उसकी गत्यात्मकता बढ़ती चली गई, परिवहन के साधनों के विकास ने इसे उत्प्रेरित करने में प्रभावी भूमिका निभाई। फलतः वर्तमान समय में एक ही प्राकृतिक पर्यावरण में एक साथ अनेक प्रकार की संस्कृतियों का अस्तित्व पाया जाता है।

किसी एक प्राकृतिक परिवेश में सांस्कृतिक विविधता के कारण संस्कृतियों के पारस्परिक समन्वयन से संस्कृति के नवोन्मेष के साथ सम्पूर्ण प्राकृतिक परिवेश की संस्कृति की ऐसी विशेषता का उदय हुआ, जिसमें

एक ही प्राकृतिक परिवेश में विशिष्ट स्तर पर अनेक प्रकार की संस्कृतियों के बावजूद समस्त प्राकृतिक परिवेश के लिये सामान्य सांस्कृतिक अभिलक्षण विकसित हुये। जिसे व्यवहारिक सन्दर्भ में 'यूनिटी इन डायवर्सिटी (एकता में विविधता)' जैसी संज्ञा प्रदान की जाती है। विश्व के कई देशों में संस्कृति के इस विशिष्ट स्वरूप का विकास हुआ है; लेकिन विश्व का सर्वाधिक आदर्श प्रतिरूप भारत में विकसित हुआ है। 'विविधता में एकता' भारतीय संस्कृति की मूल विशेषता है। भारत के इस सांस्कृतिक स्वरूप को 'सामाजिक संस्कृति' की संज्ञा दी जाती है। संस्कृतिक की इस प्रकार की विशिष्टता इसे विकास के आर्थिक सन्दर्भों में इसे सर्वाधिक सक्षम और सम्भाव्य बनाती है।

'संस्कृति' परिदृष्टि का निर्माण का कारक

संस्कृति मानवीय संदर्भों में सृजित एक ऐसा अमूर्त तत्व है, जिसका संगठन अथवा संयोजन भाषा, विचार अथवा चिंतन, ज्ञान, परंपरा तथा धर्म के पारस्परिक समन्वय से होता है। संस्कृति किसी व्यक्ति विदोषा के व्यक्तित्व को निर्धारित करने वाला एक अमूर्त तत्व है। व्यक्ति विदोषा में संस्कृति के ये तत्व मनुष्य को देता—काल संदर्भ में चैतन्य बनाते हैं, जिससे व्यक्ति के अंदर समाज एवं राष्ट्र सापेक्ष सांस्कृतिक मूल्यों का निर्माण होता है। किसी भी व्यक्ति के आंतरिक एवं वाह्य क्रिया व्यवहार का निर्धारण चिंतन से वाह्य क्रिया तक संस्कृति द्वारा ही होता है। व्यक्ति विदोषा में संस्कृति का संवर्द्धन ही व्यक्ति के परिदृष्टि निर्माण एवं विकास का कारण है। यह परिदृष्टि उसे प्रकृति और समाज के प्रति चेतना प्रदान करती है। मानव एक संस्कृतिशील प्राणी है, क्योंकि इसके पास संस्कृति है और इसी कारण यह समाज, राष्ट्र एवं राज्य का निर्माण करने में सक्षम हुआ है; जिसमें मानव जीवन निरंतर उत्कर्ष की ओर गतिशील हो रहा है।

'धर्म' जीवनशैली का सूत्रधार

संस्कृति, देश, काल, एवं परिस्थिति के सापेक्ष धर्म के माध्यम से ही व्यक्ति अथवा समाज में जीवनशैली के रूप में व्यवहृत होती है। इस प्रकार धर्म, संस्कृति का वह क्रियात्मक रूपरूप है जो व्यक्ति को समाज, पर्यावरण एवं समय के सापेक्ष संवेदनशीलता और चैतन्यता प्रदान करता है। यह मनुष्य के दृष्टि—बोध के विकास प्रक्रिया का निर्धारक है, जो संस्कृति से अनुपिणित होता है। धर्म के अभाव में व्यक्ति अथवा समाज की सांस्कृतिक दृष्टि से क्रियात्मकता की अपेक्षा नहीं की जा सकती। धर्म प्रकृति एवं समाज के सापेक्ष हमारे जीवन का अनुशासन है। धर्म हमें प्रकृति अथवा समाज के प्रति उत्तरदायित्व का बोध कराता है। वस्तुतः धर्म ही हमें वह अन्तर्दृष्टि देता है, जिससे हमें अपनी सक्षमता का बोध होता है। धर्म के सृजन का आधार तत्व भाषा है। अतः विश्व के विभिन्न भागों में जैसे-जैसे भाषा की उत्पत्ति हुई तथा उसका विकास हुआ, समय के साथ-साथ वहाँ के समाज में धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। धर्म से अनुशासित समाज, प्रकृति सापेक्ष एवं प्रकृति पोषित समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से अनेक रूपों में क्रियाशील होने लगा, जिससे जीवन की भौतिक और सांस्कृतिक गुणात्मकता निरन्तर उत्कृष्ट होती गई। इसी क्रम में ये समय के साथ अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग सभ्यता के रूप में प्रतिबिम्बित हुआ। इसी क्रम विश्व में सभ्यताओं का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार धर्म, संस्कृति के सभ्यता में रूपान्तरण का क्रियात्मक साधन एवं आधार बना।

धर्म की संकल्पना तथा मानव विकास के सन्दर्भ में धर्म की भूमिका के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धर्म बिना व्यक्ति, समाज, राष्ट्र अथवा किसी देदा का विकास गतिहीन एवं दिशाहीन हो जायेगा। अतः विकास

के सन्दर्भ में धर्म की प्रासंगिकता सदैव बनी रही। संक्षेप में धर्म, मानव विकास का, मानव विकास के लिये मानव मूल्य का सृजन—तत्व है।'

उपर्युक्त दृष्टि भारत से विश्व में भाषाई तथा सांस्कृतिक रूप में सर्वाधिक विविधता युक्त देश है। भारत के इस स्वरूप का सृजन और पोषण यहाँ के विविधता युक्त पर्यावरण ने किया है। भारत की विभिन्न संस्कृतियों का अपना विशिष्ट धर्म है। भारत की सांस्कृतिक विविधता, विकास सक्षमता की पोषक है। अतः ऐसे में प्रत्येक प्रदेश के विकास (आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरणीय विकास) के लिये धर्म की अपरिहार्यता अथवा प्रासंगिकता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

धर्म के बिना देश का प्रत्येक प्रदेश, उसकी संस्कृति एवं विकास दिशाहीन हो जायेंगे और अन्ततः विकास, विनाश में बदल जायेगा। अन्य शब्दों में विकास की सततता शून्य हो जायेगी। वर्तमान समय में जब विश्व के विभिन्न देश विकास स्तर को उच्च बनाये रखने के लिए प्रवृत्त हैं तथा भारत भी अपने सवा सौ करोड़ देशवासियों को सुखद और समृद्ध जीवन स्तर एवं जीवन शैली उपलब्ध कराने के लिये प्रयत्नशील है, ऐसे में देश के विकास की दिशा एवं गति को धनात्मक एवं सकारात्मक बनाये रखने में धर्मप्रभावी भूमिका निभा सकता है। यही कारण है कि सभ्यता के आदिकाल में जब हमारे विकास का मूलमन्त्र 'वसुधैव कुटुम्बकम्' था, तब से विकास के आधुनिक काल तक, जब शेष विश्व के देशों का मूलमन्त्र 'वैश्विकरण' (मात्र आर्थिक सन्दर्भ में), हो गया है। भारत समाज, देश व विश्व के प्रति अब भी विकास में, पर्यावरणीय विकास के उन मूल्य को संरक्षित करने में कामयाब रहा है, जिससे न सिर्फ विश्व की उन्नति हो सकती है, प्रकृति अधुण रह सकती है, बल्कि मानवता भी समृद्ध और उत्कृष्ट बनी रह सकती है।

विश्व के आर्थिक विकास में चो पर तथा पर्यावरण संरक्षण एवं जलवायु दशाओं के प्रति चिन्ता जाहिर करने में भारत की भूमिका और भागीदारी, भारत के धर्म के प्रति इन्हीं संकल्पनाओं एवं धारणाओं की अभिव्यक्ति है। वर्तमान घटना क्रम इस दिशा में भारत की संजीदगी का स्पष्ट प्रमाण है जब मात्र आर्थिक लाभ को विकास का आधार मानने वाले देश संयुक्त राज्य अमेरिका, जैपण्ड ने अपनी संकुचित आर्थिक दृष्टिकोण के कारण जलवायु से संबंधित पेरिस जलवायु संधि से पीछे हट गया, जबकि वहाँ पर भारत ने मानवतापरक दृष्टिकोण के कारण मानवता, विकास तथा पर्यावरण संरक्षण और संवर्धन के प्रति अपनी भूमिका, जबाबदेही तथा विश्व के प्रति अपनी संवेदनशीलता को प्रकट किया।

'पंथनिरपेक्षता' सांस्कृतिक विरासत की अभिरक्षा का साधन

व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का समूह धार्मिक मान्यता, विश्वास के अनुरूप आचरण करता है। जब किसी एक मान्यता, विश्वास अथवा आस्था के अनुरूप व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का आचार व्यवहार होता है तब उसे पंथ, की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार धर्मजहाँ प्रकृति प्रदत्त है तथा प्राकृतिक रूप से देश, काल, परिस्थिति के अनुरूप हमारी क्रियाओं को अनुशासित करता है, वहीं पंथ वह विश्वास तथा आस्था है, जिसे कोई व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का समूह किसी अन्य धर्म अथवा व्यक्ति के प्रति आकर्षण अथवा प्रभाव से अपनाता है।

इस प्रकार पंथके अनुशासन की कुछ नीतियाँ होती हैं। धार्मिक मान्यतायें, विश्वास, पंथ के रूप में व्यवहृत होते हैं। 'पंथनिरपेक्षता' से आशय राज्य के अपने देश के नागरिकों के प्रति उस दृष्टिकोण से है जिसमें राज्य अपने क्रियात्मक व्यवहार में किसी धर्म, पंथ, विश्वास या आस्था के प्रति आग्रह का निषेध करता है। राज्य का ये कर्तव्य है कि वो अपने राज्य के सभी धर्म एवं पंथ का समान रूप से आदर व सम्मान करे; किसी भी विशेष

धर्म अथवा पंथ को राज्य के सभी लोगों पर आरोपित न करे अर्थात् राज्य का न तो कोई धर्म होगा और न किसी धर्म अथवा पंथ को राष्ट्रीय धर्म अथवा पंथ घोषित करेगा।

भारत में संविधान निर्माताओं ने मानव के विकास तथा गरिमा को आदर देते हुये मानवता की रक्षा व संवर्धन के लिये तथा आर्थिक विकास प्रक्रिया को सक्षम और गतिशील बनाये रखने के लिये संविधान के भाग-3 में मौलिक अधिकारों में इन्हें संरक्षित करते हुये न्यायालय में प्रवर्तनीय बना दिया। 1976 में 42 वें संविधान सशोधन द्वारा संविधान की उद्देशिका एवं प्रस्तावना में 'पंथनिरपेक्ष' शब्द को शामिल कर लिया गया। ऐसा करके भारत ने एक ओर अपनी सांस्कृतिक विरासत की अभिरक्षा की तो दूसरी ओर सांस्कृतिक संवर्धन के लिये देश के सभी धर्म एवं पंथ को विकास करने की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की है। प्रत्येक राज्य की राज्य के लोगों के समाजिक-आर्थिक जीवन को उत्कृष्ट बनाने की जवाबदेही होती है। भारत प्राकृतिक विविधता सम्पन्न देश है, जहाँ की विविधतायुक्त संस्कृति विभिन्न प्रकार के धर्म, परम्परा, विश्वास के लोगों के जीवन को न सिर्फ गतिशील बनाती है, बल्कि विविध प्रकार की संस्कृतियों के पारस्परिक समन्वयन से ज्ञान, विज्ञान के सैद्धान्तिक अथवा परिकल्पनात्मक पक्षों को न सिर्फ पोषण मिलता है, बल्कि इससे विकास सक्षमता भी बनी रहती है। ज्ञान-विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में सांस्कृतिक नवोन्मेष की इस प्रवृत्ति एवं प्रतिरूप को स्पष्टता से देखा जा सकता है। आज देश विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में सतत गतिशील है, अर्थव्यवस्था की गतिशीलता और दृढ़ता निरन्तर समृद्ध होती जा रही है। इसके पीछे देश के विभिन्न प्रदेशों की विभिन्न संस्कृतियों की उस मूल चेतना की भूमिका है, जो हमें एक ओर परिकल्पनात्मक स्तर पर प्रखर बनाती है, तो दूसरी ओर सैद्धान्तिक और व्यवहारिक स्तर पर हमें प्रगतिशील बनाती है।

सन्दर्भ सूची

- 1- MacMillan, Encyclopedia of Religion.
- 2- Max muller. "Lectures on the origin and growth of religion"
- 3- Clifford Geertz (1973), Religion as a cultural system.
- 4- Sauer, C (1925), The morphology of Landscape, University of California, publication in Geography.

अवरोह्यभिक्रमः शृङ्खलाभिक्रमः मैथेटिक्स अभिक्रमः वा

सत्यदेवः⁴

अस्य अभिक्रमस्य प्रवर्तकः थामस् एफ. गिलवर्टः महोदयः (१९७२) आसीत्। 'मैथेटिक्स' इति शब्दः यूनानीभाषायाः (Greek Language's) 'मैथीन' इति शब्दात् निष्पन्नः अस्ति। एतस्यार्थः भवति – "अधिगमः" इति। गिलवर्टमहोदयस्य शब्दः "मैथेटिक्स" इत्यस्य परिभाषा इत्थं कथिता अस्ति – "अवरोह्यभिक्रमः जटिलव्यवस्थासमूहस्य विश्लेषणार्थं पुनर्निर्माणार्थं च पुनर्बलनसिद्धान्तानां व्यवस्थितप्रयोगः, यत्र शिक्षणसामग्र्याः पूर्णाधिकारस्य प्रातिनिध्यं करोति"।

अस्मिन् अभिक्रमे विषयसामग्र्याः अपेक्षया अध्ययनकर्तुः प्रतिक्रियायाः अधिकमहत्त्वं प्रदीयते। एवं रीत्या पूर्ववर्णितरेखीयाभिक्रमस्य प्रमुखोद्देशः तावत् व्यवहारपरिवर्तनं, शाखीयाभिक्रमस्य प्रमुखोद्देशः उपचारः, किन्तु अवरोह्यभिक्रमस्य प्रमुखोद्देशः पाठ्यसामग्रीणां कृते स्वामित्वप्रदानम्। अस्मिन् छात्राः सर्वविधनिष्पत्तयः क्रियाणां द्वारा एव शिक्षन्ते। अत्र व्यवहारे विभेदीकरणं, सामान्यीकरणं, शृङ्खला च महत्त्वं भजते। सर्वविधानुद्देशनेषु एतेषां त्रयाणां व्यवहाराणां शिक्षणं क्रियते। अत्रापि पाठ्यसामग्र्यः शृङ्खलारूपेण व्यवस्थाप्यन्ते। यत्र छात्रैः विशिष्टानुक्रियाः करणीयाः। परन्तु अनुक्रियाः अवरोह्यभिक्रमेण क्रियन्ते। अर्थात् अन्तिमक्रिया आरम्भे, प्रथमक्रिया अन्ते च कर्तव्या भवति। एवं रीत्या अत्र अवरोह्यशृङ्खलायाः प्रयोगः क्रियते। यतो हि रेखीये अथवा शाखीयाभिक्रमे आरोह्यक्रमः अनुस्रियते। आहत्य वक्तुं शक्यते यत् पाठ्यवस्तु एकेन शृङ्खलारूपेण व्यवस्थाप्य अन्तिमपदम् आदौ, प्रथमपदं च अन्ते प्रस्तूयते। विज्ञान-गणितादिशिक्षणे अभिक्रमोऽयम् उपयुज्यते।

अस्मिन् अभिक्रमे जटिलव्यवहाराणां विकासाय पाठ्यविषये पूर्णाधिकारप्राप्तये च छात्राणां साहाय्यं क्रियते। एवं रीत्या पाठ्यवस्तुषु 'पूर्णाधिकारप्रदानम्' एतस्याभिक्रमस्य प्रधानोद्देशः। 'अवरोही' इत्यसौ अभिक्रमः शृङ्खलाभिक्रमनाम्ना अपि अभिधीयते। यतो हि पाठ्यवस्तुनि अत्र विशिष्टशृङ्खलारूपेण व्यवस्थाप्यन्ते। यत्र च शिक्षार्थी विशिष्टानुक्रियां करोति। किन्तु एताः अनुक्रियाः अवरोह्यक्रमेण भवन्ति। अर्थात् अन्तिमानुक्रिया आदौ, प्रथमानुक्रिया अन्तिमे च क्रियते। एतस्याभिक्रमस्य प्रयोगः अमेरिकादेशे गणितविषयाणां प्रत्ययनिर्माणार्थं कृतः। सम्प्रति अस्य प्रयोगः विद्यालयेषु अन्यविषयाणां कृतेऽपि क्रियमाणः वर्तते।

अवरोह्यभिक्रमस्य प्रकृतिः

अवरोह्यभिक्रमः शिक्षणे विद्यमानन्यूनताः विधिष्य ताः दूरीकर्तुं प्रयतते। एतस्य मुख्यप्रकृतिः कार्यविश्लेषणम्। कार्यविश्लेषणस्य तात्पर्यं तावत् – कार्याणि तैः घटकैः विभजन्ते, तथा च घटकानां विस्तृतसूची कार्यस्य व्यावहारिकतत्त्वानां सन्दर्भे निर्मिता स्यात्। कार्यविश्लेषणं वस्तुतः एका पट्टिका यत्र ज्ञानं, कौशलम् अभिवृत्तीनां परिचयः भवति। तथा च तान् पृथक्कृत्य सङ्घटितपदानुक्रमे संयोज्यते, यः अधिगमकार्यक्रमार्थं प्रासङ्गिको भवति।

अवरोह्यभिक्रमस्य अवस्थात्रयम् –

१. प्रदर्शनम् (Demonstration) – छात्राणाम् अधिगमव्यवहारः प्रदर्श्यते।

२. अनुबोधनम् (Prompting) – अधिगमव्यवहारोत्पादनाय अनुबोधनानां व्यवस्था क्रियते।

⁴ वरिष्ठ-शोध-सहायकः, संस्कृत-संवर्धन-प्रतिष्ठानम्, देहली -११०००६

३. उन्मुक्तिः (Release) – अधिगमव्यवहारे ये शिक्षितव्यवहाराः सन्ति तेभ्यः अभ्यासावसराः प्रदीयन्ते । अनुबोधनानि तृतीयावस्थायां न प्रयुञ्जन्ते ।

मैथेटिक्सनिर्माणं कठिनं भवति, एतदर्थम् अभिक्रमिके विशिष्टयोग्यता भवितव्या । अत्र शिक्षमाणवस्तुनः अन्तिमपदात् प्रारभ्य प्रथमपदं यावत् प्राप्तिः सामान्यबालेभ्यः कठिना भवति ।

अवरोह्यभिक्रमस्य वैशिष्ट्यानि

अभिक्रमक्षेत्रे अवरोह्यभिक्रमस्य विशिष्टं महत्त्वं विद्यते । अवरोहस्य प्रकृतलाभानि स्वरूपं च अवगन्तुम् अस्य वैशिष्ट्यानि अवगन्तव्यानि । तानि च इत्थं वर्तन्ते –

१. अवरोह्यभिक्रमः प्रारम्भिकव्यवहारस्य आधारेण विषयसामग्रीषु पूर्णाधिकारं प्रयच्छति ।
२. अधिगमसमये विशिष्टशुद्धलायाः प्रयोगः क्रियते ।
३. अवरोह्यभिक्रमकाले विभेदीकरणस्य सामान्यीकरणस्य च नियमाः पाल्यन्ते ।
४. अवरोह्यभिक्रमे प्रदर्शनस्य अनुबोधनस्य अनुक्रियायाश्च आधारेण विषयवस्तुषु पूर्णाधिकारः प्राप्यते ।
५. पाठ्यवस्तुनि लघुभिः पदैः प्रस्तूयन्ते ।
६. कार्यस्य पूर्णता एव पुनर्बलनस्य साधनं भवति ।
७. एषा शिक्षणनीतिः अत्यन्तं नमनीया भवति । यतो हि अस्मिन् सर्वश्रेष्ठसोपानं कुत्रापि आगन्तुमर्हति ।
८. अभिक्रमनिर्मातुः शिक्षकस्य उपस्थितिं विना पाठ्यवस्तुषु पूर्णाधिकारः प्राप्यते ।
९. अधिगमकर्तुः प्रशिक्षार्थिनः च द्वयोः दृष्टौ मैथेटिक्स् तथ्यपूर्णः, सार्थकः, यथार्थः च भवति ।
१०. अवरोह्यभिक्रमः कौशलानां शिक्षणप्रशिक्षणार्थम् अतन्त्यतम् उपयोगी भवति ।
११. एषः अभिक्रमः विभिन्नकौशलानां स्थानान्तरणार्थम् अधिकोपयोगी भवति ।

अवरोह्यभिक्रमस्य सीमा

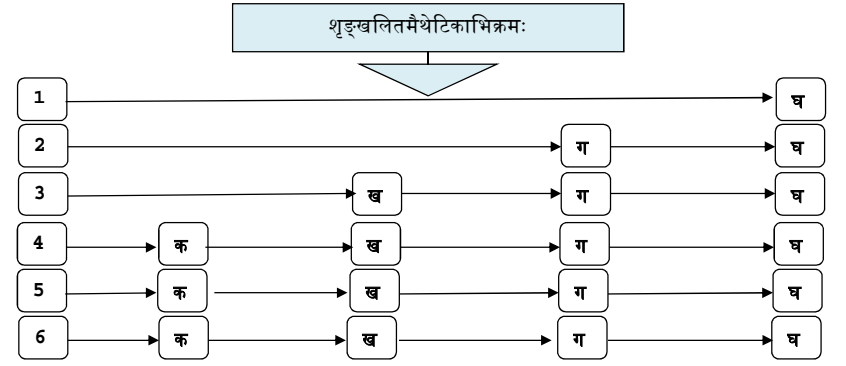
१. एतस्य अभिक्रमस्य निर्माणम् अत्यन्तं जटिलकार्यं भवति, यत् केवलं कुशलव्यक्त्या एव सम्भवति ।
२. अत्र क्रियाः अधिककालपर्यन्तं प्रचलन्ति ।
३. अवरोह्यभिक्रमस्य अध्ययने छात्राणाम् अनुक्रियार्थं स्वातन्त्र्यं न लभ्यते, अन्तिमक्रिया प्रथमं क्रियते इति हेतोः छात्राणां काठिन्यं सञ्जायते ।
४. सर्वेषु स्तरेषु विविधानां छात्राणां कृते च एतस्य प्रयोगः भवितुं नार्हति ।
५. अनेन छात्राः मनोवैज्ञानिकदृष्ट्या अभिप्रेरिताः भवन्ति, किन्तु सामाजिकदृष्ट्या अभिप्रेरिताः न भवन्ति ।
६. सर्वविधपाठ्यवस्तुनां शिक्षणम् अनेन न सम्भवति ।

निष्कर्षः – (Conclusion)

साम्प्रतिके युगे शिक्षणयन्त्राणां महद्वैशिष्ट्यं वर्तते । यन्त्राणि शिक्षणसामग्रीः तादृशरीत्या विद्यार्थिनां समक्षे प्रस्तूयन्ति, येन शिक्षार्थी स्वयं शिक्षमाणः गच्छेत् । विद्यार्थिनाम् एतादृशशिक्षणविधिः अस्माभिः योजनाबद्धः अभिक्रमाधिगमविधिः इत्युच्यते । अभिक्रमाधिगमः पाठ्यसामग्रीणाम् अभिक्रमे एव

केन्द्रितो भवति । अभिक्रमाधिगमस्य मूलविचारः बहुपुरातनः वर्तते । किन्तु विंशताब्दस्य मध्ये एतस्य प्रगतिः आरब्धा अस्ति । शिक्षणयन्त्राणां निर्माणे वी.एफ्.स्किनर्-महोदयस्य नाम सर्वप्रथमं समायाति ।

अभिक्रमशब्दः एतद्विषयं निर्दिशति यत् अभिक्रमिताधिगमार्थं पाठ्यसामग्र्यः क्रमबद्धरीत्या प्रस्तूयन्ते । येन छात्राः लघुभिः पदैः वाञ्छितोद्देश्येषु न्यूनातिन्यूनदोषान् कृत्वा प्राप्नुवन्ति । अभिक्रमिताधिगमस्य तात्पर्यं तावत् – पुस्तकमाध्यमेन यन्त्रमाध्यमेन वा शिक्षणसामग्रीणां प्रयोगार्थं संयोजनम् । अभिक्रमः अनेकैः प्रकारैः क्रियते । किन्तु प्रामुख्येन केवलं रेखीयाशाखीय-अवरोह-अभिक्रमाणां त्रयाणाम् एव चर्चा कृता वर्तते । आधुनिके कालेऽस्मिन् अभिक्रमिताधिगमस्य उपयोगेन विभिन्नसंस्थासु पाठ्यक्रमं निर्माय छात्राणां मानसिकतायाः अनुगुणं शिक्षणं दीयमानं वर्तते । छात्राणां क्रमिकविकासः अनेन अभिक्रमेण सञ्जायते । एकैकं सोपानम् आरुह्य विद्यार्थी उत्तरोत्तरं ज्ञानं प्राप्तुमर्हति ।



अवरोह्यभिक्रमसंकल्पना –

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।

छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥१५.१॥

प्राहुः ।

किं प्राहुः ?

कम् अव्ययं प्राहुः ?

कीदृशम् अश्वत्थम् अव्ययं प्राहुः ?

ऊर्ध्वमूलं पुनश्च कीदृशम् अश्वत्थम् अव्ययं प्राहुः ?

ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् अव्ययं प्राहुः,

यस्य कानि ?

ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् अव्ययं प्राहुः,

यस्य कानि पर्णानि ?

अव्ययं प्राहुः ।

अश्वत्थम् अव्ययं प्राहुः ।

ऊर्ध्वमूलम् अश्वत्थम् अव्ययं प्राहुः ।

ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् अव्ययं प्राहुः ।

ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् अव्ययं प्राहुः,

यस्य पर्णानि ।

ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् अव्ययं प्राहुः,

यस्य छन्दांसि पर्णानि ।

ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् अव्ययं प्राहुः,
यस्य छन्दांसि पर्णानि, तं किं करोतु ?
ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् अव्ययं प्राहुः,
यस्य छन्दांसि पर्णानि तं कः वेद ?
ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् अव्ययं प्राहुः,
यस्य छन्दांसि पर्णानि तं यः वेद, सः कः ?

ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् अव्ययं प्राहुः,
यस्य छन्दांसि पर्णानि तं वेद ।
ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् अव्ययं प्राहुः,
यस्य छन्दांसि पर्णानि तं यः वेद ।
ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् अव्ययं प्राहुः,
यस्य छन्दांसि पर्णानि तं यः वेद, सः वेदवित् ।

उपरि निर्दिष्टे पद्यांशस्य आकाङ्क्षाक्रमे 'ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् अव्ययं प्राहुः, यस्य छन्दांसि पर्णानि' इत्यादिकं वैशिष्ट्यं यः जानाति सः कः ? इति ज्ञातुम् अध्येत्रा अनेकैः सोपानैः तत्र पर्यन्तम् आगमनीयं भवति, तदा सः 'वेदवित्' इति संज्ञा-निर्दिष्ट-विशेषणपदं जानाति । इदं प्राथम्येन अध्येत्रा ज्ञेयपदम् अन्तिमे बुध्यते । इत्थं प्रकारान्तरैः अभिक्रमप्रकारः अयं प्रतिपादयितुं शक्यते ।

सन्दर्भग्रन्थसूची -

१. मिश्रः डा. रमाकान्तः, शैक्षिकप्रविधिः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण - 2013 ।
२. पाण्डेयः डा. रामशक्लः, संस्कृतशिक्षण, विनोदपुस्तक मन्दिर, आगरा-2, 24वाँ संस्करणम्- 2007 ।
३. शर्मा विनोद, शर्मा दया, संस्कृत शिक्षण, आस्था प्रकाशन, जयपुर, संस्करणम् -2010 ।
४. मित्तलः डा. श्रीमती सन्तोष, संस्कृतशिक्षणम्, नवचेतना पब्लिकेशन्स, जयपुर, प्रथम संस्करणम् -2006 ।
५. पाण्डेय के.पी. शिक्षण अधिगम की तकनालाजी, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी22100, प्रथम संस्करण- 2011 ।
६. सिंघल अनुपमा, कुलश्रेष्ठ एस्. पी. शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार, अग्रवालपब्लिकेशन्स, आगरा-2, 16 वाँ संस्करण 2013/2014 ।
७. सिंह अरुण कुमार, शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पटना. तृतीय संस्करण-2010,2013 ।
८. पाण्डेय.के.पी. नवीन शिक्षा मनोविज्ञान, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी, चतुर्थसंस्करण-2013 ।
९. आचार्यः श्रीमद्विद्वद्रः वरदराजः, लघुसिद्धान्तकौमुदी, गीता प्रेस गोरखपुर प्रकाशनम्, सप्तमसंस्करणम् ।
१०. भट्टः जि. महाबलेश्वरः, कारकम्, संस्कृतभारती बेङ्गलूरु प्रकाशनम्, पञ्चमं संस्करणम् 2008 ।

चन्द्रप्रभचरितस्य महाकाव्यत्वम्

चाँदनी⁵

शोधसारः

प्राचीनभारतीयदर्शनस्य मुख्यतः परम्पराद्वयं प्राप्नोति – आस्तिकपरम्परा, नास्तिकपरम्परा। आस्तिकपरम्परायां षट् दर्शनानि आगच्छन्ति नास्तिकपरम्परायां च त्रीणि दर्शनानि सन्ति। वैदिकपरम्परायां अनास्थावादि-नास्तिकपरम्परायां जैनदर्शनं मुख्यदर्शनमस्ति। जैनधर्मे चतुर्विंशतिः तीर्थकराः बभूवुः। तेषु अष्टमः तीर्थकरः भगवान् चन्द्रप्रभः बभूव, तस्यैव भगवतः चन्द्रप्रभस्य पूर्ववर्तिषट् जन्मनां तथा च स्वयं चन्द्रप्रभरूप-अष्टमजन्मनः विवरणं कविवीरनन्दिकृत-चन्द्रप्रभचरिते प्राप्यते। काव्यविभागेषु काव्यमिदं महाकाव्यरूपे प्रथितमस्ति। अस्मिन् शोधपत्रे 'चन्द्रप्रभचरितम्' महाकाव्यस्य समीक्षणं काव्यशास्त्रस्य प्रथित महाकाव्यलक्षणधारे क्रियते।

=====

लक्ष्यग्रन्थान् समालोच्य आचार्यैः लक्षणग्रन्थानां निर्माणं कृतम्। काव्यान् दृष्टवैव काव्याचार्यैः काव्यशास्त्रग्रन्थानां रचना विहिता। काव्यशास्त्रपरम्परायां आद्याचार्य- भरतमुनेः अनन्तरं भामहप्रभृतिनेकैः आचार्यैः महाकाव्यलक्षणे पूर्ववर्तिनामाचार्याणां सर्वेषां महाकाव्यलक्षणानां परिष्कारः दृश्यते। अत एव पत्रेऽस्मिन् आचार्यवीरनन्दिकृत 'चन्द्रप्रभचरितम्' इति महाकाव्यस्य साहित्यदर्पणस्य महाकाव्यलक्षणानुसारेण विचारः क्रियते।

आचार्यविश्वनाथेन महाकाव्यस्य कलेवरविषये लिखितम् –

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।¹

नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।²

'चन्द्रप्रभचरितम्' महाकाव्यं सर्गेषु निबद्धमस्ति। सर्गा अपि अष्टादश सन्ति। तेषां सर्गाणां परिमाणमपि अतिदीर्घं नास्ति अतिस्वल्पमपि नास्ति। मध्यपरिमाणकानि सर्गाणि सन्ति अस्मिन् महाकाव्ये।

नायकः -

नायकस्य विषये उल्लिखितं लक्षणे – 'तत्रैको नायकः सुरः'³ अर्थात् देवप्रकृतिकः कश्चिद् नायकः महाकाव्ये भवेत्। एतदनुसारेणैवात्रापि महाकाव्ये जैनपरम्परायाः चतुर्विंशतिः तीर्थकरेषु अनन्यतमः अष्टमः तीर्थकरः चन्द्रप्रभः नायकः अस्ति यः जैनपरम्परायां देवकल्प एवास्ति।

अन्यच्च लिखितं साहित्यदर्पणे –

सदृशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।

⁵ शोधच्छात्रा राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानम् (मानित विश्वविद्यालयः) मुख्य-परिसरः, नवदेहली

एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ।। 4

महाकाव्येऽस्मिन् नायकस्य चन्द्रप्रभस्य अनेकेषां जन्मनां वर्णनम् अस्ति। प्रत्येकस्मिन् जन्मनि सः क्षत्रियकुल एव जन्म लब्धवान् तथा च धीरोदात्तगुणान्वितोऽपि दृश्यते।

अजितसेनस्य विषये लिखितम् –

इत्थं मधौ मधुकरीमुखरीकृताशे व्याजृम्भिते मकरकेतुनिसर्गबन्धौ।

भूयः प्रविश्य मुदितः सहसा निशान्तं विस्त्रब्धमित्यभिदधेऽङ्कगतां स देवीम् ॥⁵

रसः –

महाकाव्यस्य रसविषये साहित्यदर्पणे उल्लिखितमस्ति –

शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।

अंगानि सर्वेऽपि रसाः रसाः सर्वे नाटकसंघयः।⁶

'चन्द्रप्रभचरितम्' महाकाव्यस्य नायकः जैनधर्मस्य अष्टमः तीर्थकरः अस्ति अतः काव्यस्यास्य अङ्गीरसः शान्तो वर्तते। यथा –

असुखैकफलं प्रभञ्ज्य यो रसति प्रेममयं न पल्लवम्।

प्रविरक्तमतिः प्रवर्तते पुरुषः श्रेयस्य हा स वञ्चितः ॥⁷

अन्येषामपि रसानां प्रयोगः कविना यथास्थाने कृतः। शृङ्गाररसः –

तद्रूपलोकनविलोभितलोचनायाः कस्याश्चिद् कस्याश्चिदुद्धृथितनीवि नितम्बबिम्बे।

संसक्तमिन्दुरुचिरं दधदंतरीयं स्वेदाम्बु बुद्धिमदिव स्वलितं ररक्ष ॥⁸

वीर रसः –

तस्मान्न दुष्टकरिणो यदि पौरलोकं रक्षामि तन्मम वृथा क्षितिपालशब्दः।

संचिन्तयन्निति स बाहुबलाद्वितीयो निर्गत्य तस्य बलिनोऽभिमुखीबभूव ॥⁹

कथावस्तु –

आचार्यविश्वनाथेन महाकाव्यस्य कथावस्तुनः विषये लिखितं यत् –

इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ॥¹⁰

चन्द्रप्रभचरितस्य वृत्तं जैनधर्मस्य तीर्थंकरस्य इतिहासः अस्ति । अतः सज्जनाश्रयं वृत्तमस्य काव्यस्यास्ति इति वक्तुं शक्यते ।

विश्वनाथेन उल्लिखितं यत् -

क्वचिन्निन्दां खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ॥¹¹

एतदनुसारेण कविना महाकाव्यस्यादौ सुजनप्रशंसा खलानां च निन्दा विहिता -

गुणानगृह्णन् सुजनो न निवृत्तिं प्रयाति दोषानवदन्न दुर्जनः ।

चिरंतनाभ्यासनिबन्धनेरिता गुणेषु दोषेषु च जायते मतिः ॥ 12

समाधिगम्य समसत्समीहितामवनतैर्महतीं फलसंपदम् ।

क्षितिभूतः कलमैरवलिकितैः स्मृतिरजायत सज्जनगोचरा ॥¹³

फलम् -

चतुर्वर्गफलप्राप्तिः काव्यस्य प्रयोजनमस्ति इति निगदितम् आहार्य विश्वनाथेन । अत एव महाकाव्यलक्षणे तस्य प्रयोजन विषये लिखितम् --

चत्वारस्तस्य सर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ॥¹⁴

चन्द्रप्रभचरिते धर्माधिकाममोक्षाणां दर्शनं भवति । जैनपरम्परानुसारं निर्वाणं जीवस्य अंतिमं लक्ष्यमस्ति -

ततो मोक्षोऽपि संसिद्धो रत्नत्रय निबन्धनः ।

जीवाजीवास्रवैर्बन्धनिर्जरा संवरैः समम् ॥¹⁵

महाकाव्येऽस्मिन् नायकस्य चन्द्रप्रभस्य मोक्षोपलब्धिः महाकाव्यान्ते दृश्यते ।

तत्रासौ परिसुक्तामासविह्वलितः पक्षे सिते सप्तमी-

तिथ्यां भाद्रपदे स्थितः प्रतिमया सार्धं मुनीनां गणैः ।

निर्बाधं दशपूर्वलक्षपरिमायुक्तायुषः प्रक्षये -

शुक्लध्याननिरस्तकृत्स्नकलुषः सिद्धेः पदं शिथ्रिये ॥¹⁶

मङ्गलाचरणम् -

महाकाव्यस्य मङ्गलाचरणं कीदृशं भवेत् इति विषये साहित्यदर्पणकारेण लिखितं यत् महाकाव्यस्य मंगलाचरणं नमस्कारात्मकम् , आशीर्वादात्मकं, वस्तुनिर्देशात्मकं वा भवेत् तथा च तस्मिन् खलानां निन्दां सज्जनानाञ्च प्रशंसां भवेत् ।

आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ॥¹⁷

चन्द्रप्रभचरितस्य मङ्गलाचरणं आशीर्वादात्मकं तथा च नमस्कारात्मकं वर्तते । प्रथमसर्गस्य द्वितीये पद्ये जैनधर्मस्य अष्टमतीर्थंकरं सर्वेभ्यः रक्षां याचते ।

स पातु यस्य स्फटिकोपलप्रभे प्रभाविताने विनिमग्नमूर्तिभिः ।

विदिद्युते दुग्धपयोधिमध्येगैरिवामरैर्वः शशिलाञ्छनो जिनः ॥ 18

तत्रैव चतुर्थे पद्ये भगवन्तं महावीरं नौति ।

जराजरत्यास्मरणीयमीश्वरं स्वयंवरीभूतमनश्चरश्रियः ।

निरामयं वीतभयं भवच्छिदं नमामि वीरं नूसुरासुरैः स्तुतम् ॥¹⁹

आचार्यविश्वनाथेन निगदितं यत् महाकाव्ये सन्ध्या-सूर्योदय -रात्रि - पर्वत - युद्ध - समुद्र - विवाह -मंत्र - यज्ञ - पुत्रजन्मादीनां वर्णनं विस्तृतरूपेण कर्तव्यम् -

संख्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ।

प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलतुर्वनसागराः ॥²⁰

चन्द्रप्रभचरिते एतेषां सर्वेषां प्रकृतेः उपादानानां मानवकर्मणां च विस्तृतरूपेण वर्णनं लभ्यते । उदाहरणरूपे अत्र युद्धवर्णनस्य पद्यमेकं प्रस्तूयते -

षट्खण्डमण्डितमखण्डमिति प्रचण्डकोदण्डखण्डितरिपुर्भरतं प्रसाध्य ।

प्रत्याजगाम जगतीतिलकः स सम्राडुत्कण्ठमाननिजबन्धुजनामयोध्याम् ॥²¹

महाकाव्यस्य नामकरणम् -

आचार्यः विश्वनाथः महाकाव्यलक्षणे लिखितं यत् महाकाव्यस्य नाम काव्यवृत्तस्य नायकस्य वा नाम्ना भवेत् । अस्यापि महाकाव्यस्य नाम नायकस्य 'चन्द्रप्रभस्य' नाम एव आधारीकृत्य कविना धृतम् ।

निष्कर्षः -

अस्य शोधपत्रस्य निष्कर्षरूपेण एवं वक्तुं शक्यते यत् महाकाव्यनियमनिकषे यदि चन्द्रप्रभचरितस्य परीक्षणं क्रियते चेत् सर्गसंख्या विषये काव्यमिदं लक्षणानुसाररूपमस्ति । महाकाव्यस्यास्य सर्गाः मध्यपरिमाणकाः नायकश्च धीरोदात्तप्रकृतिकः अस्ति । शान्तरसः मुख्यः अन्यरसाः अङ्गभूताः सन्ति । महाकाव्यस्य नामकरणं नायकनाम्नि वर्तते । मंगलाचरणं कथावस्तु इत्यादयः नियमानुसारमेव वर्तन्ते । पर्वतवृक्षसरोवराणां वर्णनं विहितं यत् च महाकाव्यस्य नियमानुसारी वर्तते । महाकाव्यलक्षणे छन्दोनियमविषये लिखितमस्ति यत् एकस्मिन् सर्गे एकस्य छन्दसः प्रयोगं भवेत् सर्गान्ते च केषुचित् पद्येषु अन्यस्य कस्यचित् छन्दसः प्रयोगं भवेत् । अस्य नियमस्यातिक्रमणं अस्मिन् महाकाव्ये परिलक्ष्यते ।

शांतरसमझीकृत्य रचितानि महाकाव्यानि अङ्गुलिगण्यानि एव सन्ति । तेषु अपि जैनपरम्परां प्रकटयितुं महाकाव्यं महाकाव्यपराम्परायां स्वकीयं उच्चस्थानं विभर्ति ।

सन्दर्भः -

1. साहित्यदर्पणः - 6/315
2. साहित्यदर्पणः - 6/320
3. साहित्यदर्पणः - 6/315
4. चन्द्रप्रभचरितम् - 7/83
5. चन्द्रप्रभचरितम् - 11/85
6. साहित्यदर्पणः - 6/318
7. साहित्यदर्पणः - 6/319
8. चन्द्रप्रभचरितम् - 1/7
9. चन्द्रप्रभचरितम् - 13/44
10. साहित्यदर्पणः - 6/316
11. चन्द्रप्रभचरितम् - 8/51
12. साहित्यदर्पणः - 6/317
13. चन्द्रप्रभचरितम् - 1/79
14. साहित्यदर्पणः - 6/318
15. चन्द्रप्रभचरितम् - 2/109
16. चन्द्रप्रभचरितम् - 18/153
17. साहित्यदर्पणः - 6/319
18. चन्द्रप्रभचरितम् - 1 / 2
19. चन्द्रप्रभचरितम् - 1 / 4
20. साहित्यदर्पणः - 6/322
21. चन्द्रप्रभचरितम् - 7/80

सन्दर्भ-ग्रंथ-सूची -

1. चन्द्रप्रभचरितम् - वीरनन्दी , संपादक - पं. अमृतलाल शास्त्री . प्र.- लालचन्द्र हीराचन्द्र दोशी , जैन संस्कृति संरक्षक संघ सोलापुर , 1971
2. साहित्यदर्पणः , विश्वनाथः , व्या. - शालिग्राम शास्त्री , प्र. - मोतीलाल बनारसीदास , दिल्ली , 1977

संस्कृताध्ययनाध्यापनस्य प्रासङ्गिकता

सुनीलकुमारठाकुरः⁶

शोधसारः

शिक्षाप्रक्रियायामधिगमः अतितरां प्राधान्यमावहति। अधिगमे च अवधानचिन्तन-संस्कृतं महत्त्वं भजते। अवधानमन्तरा अध्यापितविषयस्य अवगमनं दुष्करम्। तथैव चिन्तनमन्तरा विषयस्य तलस्पर्शज्ञानं न ज्ञातुं सम्भवति। इत्थं सावधानतया अधीतस्य सुचिन्तितस्यापि स्थिरीकरणं न भवति चेत् शिक्षा ननु दुष्फला जायेत। यथा - स्मर्यते वेदधर्मोऽनेन, धर्मशासनशास्त्रे वेदार्थानुभवजन्ये वेदार्थानुवादके मुनिप्रणीते वाक्यरूपे शास्त्रे वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीलं च तद्विदाम्। (मे.को.पृष्ठ -373)

संस्कृतं हि भाषा इति सर्वविदितो विषयः। अथापि केचनेमां भाषां मृताभाषा, केवलं ग्रन्थस्य भाषा, क्लिष्टा भाषा, अप्रासङ्गिकी भाषा इति सविशेषणं ब्रूते। अपरे पुनः भाषाया अस्या मृतत्वं ग्रन्थस्थत्वं, क्लिष्टत्वं वा नाङ्गीकुर्वन्ति, साधयन्ति अस्याः भाषायाः अमृतत्वम्, व्यावहारिकत्वम्, अक्लिष्टत्वञ्च महता संरम्भेण। कोटौ अत्र विविधभाषासु कृतभूरिपरिश्रमाः विद्वांसो विलसन्ति, ते महिमानं च भाषाया अस्याः स्तुवन्ति, अध्ययनाध्यापनञ्च कुर्वन्ति। ते भारतीयसंस्कृतभाषाणां विषये गीर्वाणवाण्याः महदुपकारं समुल्लिखन्ति, भाषा हि गैर्वाणी भारतीयभाषाणां स्रोतस्विनी, भारतीय नदीनां भागीरथीव इति श्रद्धयते हि मनीषिप्रवराः।

=====

प्रतिदिनं प्रवर्धमानाः जटिलाः समस्याः जीविकासम्पादनविषयिण्यः तदुपार्जनाय मानवमात्रं प्रेरयन्तीति तु सर्वविदितं सत्यमेव। संस्कृताध्ययनेन सुलभतया जीविकोपार्जनं तथा गौरवपूर्णं च जीवनं नैव शक्यमिति भ्रान्त्या कतिपय जनाः संस्कृताध्ययनं प्रति विमुखाः। अत एव यत्र - कुत्रापि संस्कृतच्छात्रः गच्छति अथवा संस्कृतविश्वविद्यालय- महाविद्यालयाधिकारिणः गच्छन्ति तत्र प्रश्नोऽयमसकृतं पृच्छते। 'संस्कृतभाषाध्ययनेन उद्योगः वृत्तिः वा इदानीं लभ्यते किम् ?' इति।

संस्कृतभाषायाः तन्माध्यमेनैव पठनेन अस्मात् समाजात् तद्व्यवहाराच्च दूरीकृताः भवेम संस्कृतवाङ्मयाम्बुधुन्नीताः शालासु पाठ्यमानाः विषयाः लोकोपकारकाः न सन्ति, ते च विषया अद्यतने प्रौद्योगिके औद्योगिके च काले असाम्प्रतिकः (Out Dated) इत्यतः कारणात् अप्रासङ्गिताम् आरोपयन्ति। अतः संस्कृताध्ययनं प्रति प्रेणादातुमस्माकं कर्तव्यो भवति।

⁶ अनुसन्धाता, शिक्षाविभागः, राष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, तिरुपति:

न्यायदर्शने सति सविकल्पकप्रत्यक्षे न स्मृतियोगः स्वीक्रियते, कौमारिल्लास्तु
पूर्वानुभूतजात्यादिधर्मविशिष्टपिण्डान्तराध्वसाये स्मृतेः सन्निवेशमङ्गीकुर्वन्ति। अतोऽत्रानिन्द्रियजन्य
स्मृत्यनुविद्धज्ञानस्य प्रत्यक्षतां प्रतिपादयन्तः कुमारिलपादा व्याचक्षिरे

करणं चेन्द्रियं बुद्धेर्न तत्रज्ञानमाहितम्।

ततः स्मृत्यसमर्थत्वाद् विकल्पोऽतो न वार्यते।। (यो.सू.-121)

संस्कृतभाषा हि पञ्चसहस्राधिकवर्षतिहासयुक्तायाः भारतीय सभ्यतायाः प्रतिनिधिः महती बौद्धिकी,
सामाजिकी, नैतिकी, आध्यात्मिका च परम्परा एतद्भाषायाः राराज्यते। वेदोपनिषच्छास्त्रादिषु रामायणमहाभारतादिषु
च परिदृश्यमानं साहित्यं मानवमूल्यानि च प्रागेव अद्यापि नितरां प्रासङ्गिकानि। उच्चतमविकासं प्राप्तायाः सभ्यतायाः
प्रतिनिध्यं वहति। संस्कृते मानवजीवनसम्बद्धानां समेषामपि पक्षणां उत्तमोत्तमं ज्ञानं ननु सन्निहितम्।

छान्दोग्योपनिषदि सनत्कुमारः नारदं पृच्छति- “भवता का विद्या अधीता ?” इति । नारदो वदति – ऋग्वेदं
भग्नोऽध्येमि यजुर्वेदं, सामवेदामाथर्वणं, चतुर्थमितिहासपुराणं, पञ्चमं वेदानां वेदं, पित्र्यं, राशिं, दैवं, निधिं,
वाकोवाक्यमेकायनं, वेदविद्यां, ब्रह्मविद्यां, भूतविद्यां, क्षत्रविद्यां, नक्षत्रविद्यां, सर्पदेवजनविद्यां मे तद्भगवोऽध्येमि
(7/1/2)

पाठनावसरे माध्यमभूता भाषा तु उद्देश्यानुगुणं भिद्यते। तन्नाम भाषा कया भाषया पाठनीया इति तु निश्चीयते-
केनोद्देश्येन भाषापाठनं प्रवर्तते इत्येतत् अवलम्ब्य। इदानीं संस्कृपाठनस्य यः उद्देश्यः अस्ति तस्य साधनार्थं तु
संस्कृतमाध्यमं न आवश्यकम्। अन्यभाषाक्षेत्रे ताः भाषाः तत्तन्माध्यमेन एव पाठ्यन्ते इत्यतः संस्कृतपाठनाय
संस्कृतमाध्यमम् आवश्यकमिति कथनं न युक्तिसम्मितम्। अन्यैः क्रियते इत्यतावता एव अस्माभिरपि किं तदेव
करणीयम् ? किम् अनुकरणमात्रमस्माकं उद्देश्यः विषयज्ञानमात्रं न। संस्कृतं भाषात्वेन परिगण्यते अद्य। भाष्यते इति
भाषा। वृक्षस्य फलपुष्पपर्णादीनि निरन्तरं स्वीकुर्वन्तः भवामः चेत् किं वृक्षः चिरं जीवेत् ? वृक्षस्य दीर्घजीवनाय
अस्माभिः मूलानि पोषणीयानि भवन्ति। मूलानि दुर्बलानि चेत् वृक्षः पतति। तदैव संस्कृतस्यापि पोषणं कुशलरूपेण
स्यात् दीर्घत्वमप्यस्य वर्धिष्यति।

आदौ भवतु नाम आङ्ग्लभाषामाध्यमेन इतरभाषामाध्यमेन वा कालान्तरे यथाशीघ्रं मूलग्रन्थाः भारतीय
विविधभाषासु समुपलभ्यमानाः संस्कृतभाषामपि सम्यग्लिखिता अनूदिता वा भवेयुः। एतेन संस्कृतसाहित्यस्य
विषयगता श्रीवृद्धिस्सम्भाव्यते। विविधेषु नवीनेषु विषयेषु देवगिरा ग्रन्थग्रथने तत्तद्विषये कृतभूरिश्रमाः विद्वांसः
प्रोत्साहनीयाः। स्नातकस्तरपाठ्यक्रमनिर्माणार्थं विश्वविद्यालयानुदानायोगेन पूर्वं या योजना अनुष्ठिता तदन्तर्गततया
प्रथमस्नातकस्तरायाः नूतनविषयेषु नवीनाः पाठ्यक्रमाः नूतनाः पाठ्यग्रन्थाश्च निर्मेयाः।

संस्कृताध्ययनाधीताः छात्राः अध्ययनादन्यत्र अपि वृत्तिमुद्योगं वा लभेरन्, इत्युद्देश्येन पाठ्यक्रमाः परिष्कृताः
भवेयुः, विषयगतः बोधनगतश्च गुणोत्कर्षः सम्पादनीयः। एतेन च संस्कृताध्ययनक्षेत्रादन्यत्र
विद्यमानेऽतिविषमस्पर्धापरिसरेऽपि संस्कृतच्छात्रः स्वकीयां वृत्तिं स्वयमेव सम्पादयितुं समर्थो भवति। एवं यदि क्रियेत
प्रयत्नः आत्महीनभावानुभवसम्भावना यास्ति सा संस्कृतं पठस्सु छात्रेषु नोदीयादेव।

अद्यत्वे संस्कृतसम्बन्धे सम्पूर्णदेशे अभिनवोत्सवः दरीदृश्यते साम्प्रतं समग्रमपि विश्वं पश्यति
संस्कृतमभिलक्ष्य। अस्मात्सौभाग्यं यत् संस्कृतभारती समग्रसंसारे स्वीयसंस्कृतप्रचारान्दोलनं महता प्रयासेन
प्रसारयन्ती श्लाघनीयं कार्यं विदधाति इति। संस्कृतशिक्षणस्य प्रमुखमुद्देश्यं मानवनिर्माणम्। संस्कृतेन मानवा यदि न
निर्मयिरेत् तर्हि संस्कृतशिक्षणाध्ययनोद्देश्यम् भवति अपूरितमेव। अद्य शिक्षान्तरैः मानवा न निर्मायन्ते प्रत्युत वैद्याः
यन्त्राज्ञश्च निर्मायन्ते। सर्वेषु विषयेषु सर्वासु कलासु विशेषज्ञाः निर्मायन्ते।

संस्कृतेनैव केवलं संस्कृताः मानवाः निर्मातुं शक्याः। अतो हेतोः संस्कृतं न केवलं भाषारूपेण पाठनीयम्।
प्रत्युतं मानवनिर्माणार्थं पाठनीयम्। विद्यालयस्तरे संस्कृतमाध्यमस्य अभावे स्नातक-स्नातकोत्तरस्तरे संस्कृतमाध्यमं
यदि न स्यात्। स्नातक-स्नातकोत्तरस्तरे संस्कृतमाध्यमं न स्यात्तर्हि विद्यालयस्तरे संस्कृतमाध्यमं कथं भवितुमर्हति ?
एषः अन्योन्याश्च कथं परिहारणीयः? इति चिन्तनीयविषयः।

अन्यच्च संस्कृतमाध्यमं शिक्षकस्य सम्भाषणसामर्थ्यं विशेषतः अपेक्षते। स्वयमसमर्थः अन्यान् प्रवर्तयितुं न
अर्हति। अन्यच्च, संस्कृतमाध्यमेन पठनावसरे छात्राणां सम्भाषणाय पर्याप्ततया अवकाशः दातव्यः भवति। एतावान्
समयः संस्कृतपाठनाय न दीयते। यदि शिक्षकेण एतदर्थं समयः व्ययीक्रियेत तर्हि तद्वर्षीयः पाठ्यक्रमः असमाप्तः
तिष्ठेत्।

एनं सन्ति काश्चन समस्याः। एताः एवं क्रोडीकर्तुं शक्याः –

- ❖ विद्यालयस्तरे संस्कृतमाध्यममस्ति चेदेव स्नातकस्नातकोत्तरस्तरे संस्कृतमाध्यममानेतुं शक्यम्।
- ❖ अध्यापकस्य सम्भाषणसामर्थ्यं पाठनकौशलं च विशेषतः भवेत्।
- ❖ समयः आधिक्येन अपेक्ष्यते।
- ❖ संस्कृतमाध्यमेन पठनं कठिनमिति छात्राः चिन्तयेयुः।

परिहारमार्गः

- ❖ अनुकूलपरिषे असति, न कोऽपि प्रयत्नः सफलो भवेत्। अतः संस्कृतमाध्यमस्य आनुकूल्यकल्पनाय केचन
उपायाः अवश्यं चिन्तनीयाः। ते च केचन यथा –
- ❖ संस्कृतमाध्यमेन पाठनं सर्वेषु स्तरेषु आरब्धः स्यात् युगपदेव।

- ❖ वर्षारम्भे छात्राणां कृते विशेषतः “उपोद्वलककक्षा” चालनीयाः। तेन छात्राः संस्कृतेन पाठितुमवगन्तुं शक्नुयुः।
- ❖ अध्यापकेन सरलेन संस्कृतेन पाठः करणीयः।
- ❖ संस्कृतमाध्यमेन पाठनमनिवार्यम् इत्येषः भावः सर्वेषु शिक्षकेषु अवश्यं स्यात्। अनिवार्यतायां सत्याम् एव प्रवृत्तिः भवितुमर्हति।
- ❖ माध्यमिक-उच्चमाध्यमिक-स्नातक-स्नातकोत्तरादीनां पाठ्यक्रमाणां परस्परसम्बन्धः सङ्गतिः च चिन्तनीया। एकैकस्तरस्य पाठ्यक्रमस्य निर्माणं करोति एकैका संस्था। सर्वेषु पाठ्यक्रमेषु अनुप्युतता अस्ति चेदेव अधिकः लाभः स्यात्।

एतत् तु स्पर्धायुगम्। संस्कृतभाषया अपि अन्यभाषाभिः स्पर्धनीया अस्ति अद्य। यदि संस्कृतक्षेत्रमेतदर्थं सज्जं न भवति तर्हि स्पर्धा अपि विषमा भवेत्। समैः सह खलु स्पर्धा शोभते। स्पर्धायाः समत्वं सम्पादनीयं चेत् बलम् आसादनीयम् एव। अद्य संस्कृतं स्पर्धार्हस्थितौ नास्ति। अतः शीघ्रातिशीघ्रम् अस्माभिः स्थितिः परिवर्तनीया परिष्करणीया च।

यदि एतादृशमन्यं वा विशेषज्ञैः सुचिन्तितं कार्यविधिं मनसि निधाय पाठ्यक्रमनिर्माणं तत्र गुणोत्कर्षं च सम्पादयितुं भृशं प्रयत्नामहे तर्हि न्यूनमेव ‘संस्कृतम्’ अप्राप्त्युक्तं, “संस्कृतं कालानुसारि न” इत्याद्यपदभाषितैः दूरीकृताः भवेम। एतादृशेन च प्रयत्नेन संस्कृतच्छात्राणाम् अध्यापनादन्यत्र स्वयमेव उद्योगावसराः समायान्ति, तेषु उद्योगाभाव- उद्योगप्राप्तिसन्देहदोलापतिताश्च न भवेयुः।

ग्रन्थकर्ता	ग्रन्थाः	वर्षम्
डा. झा, उदयशङ्करः -	संस्कृतशिक्षणम्	2016
डा. विश्वासः	कौशलबोधिनी	2016
डा. मिश्रः, लोकमान्यः	भारतीयाः शिक्षाशास्त्रिणः	2007
द्विवेदी, कपिलदेव	संस्कृतनिबन्धशतकम्	1996
डा. लता, एन.	साहित्यशिक्षणविधयः	2007
डा. शर्मा, वी. मुरलीधरः	संस्कृतशिक्षणसमस्याः	2003
डा. शुक्लः, रजनीकान्तः	व्याकरणशिक्षणम्	2007
डा. शर्मा, च.ल.ना.	संस्कृतशिक्षणम् - प्रविधयश्च	2008
डा. झा, मदनमोहन	सूक्ष्मशिक्षणम्	2007

जातकपारिजातस्य समीक्षात्मकमध्ययनम्

कार्तिककुमारः⁷

शोधसारः

संस्कृतवाङ्मयशिरोमुकुटभूतः एव ज्योतिषशास्त्रस्योत्पत्तिं ब्रह्मण एवाभूदिति सर्वथा विश्वस्यते । ब्रह्मा हि पितामहोऽस्य जगतः यज्ञसाधननिमित्तं चतुर्भ्यो मुखेभ्यश्चतुर एव वेदान् प्रावोचत् । तेन हि वेदानां यज्ञात्मकत्वम् । ते च यज्ञाः कालाश्रयेणैव सिद्ध्यन्ति इति तत्सिद्ध्यर्थं ब्रह्मा कालावबोधकं ज्योतिषशास्त्रं विनिर्माय नारदाय प्रोवाच । नारदश्च शास्त्रस्यास्य महत्त्वमङ्गीकृत्य लोके प्रवर्तयामासेदम् ।

=====

मतान्तरानुसारेणेदं शास्त्रं प्रथमं सूर्येण मयासुराय प्रोक्तम् । ततश्च जगति प्रवर्तितमिति ।
संहितानुसारेण ज्योतिः शास्त्रप्रवर्तका अष्टादश आचार्याः, ते च यथा –

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः ।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिराः ॥
रोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः ।
शौनकोऽष्टादशश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः ॥

नारदस्त्वथ तानित्यमाह –

ब्रह्माचार्यो वसिष्ठोऽत्रिर्मनुः पौलस्त्यरोमशौ ।
मरीचिरङ्गिरा व्यासो नारदः शौनको भृगुः ॥
च्यवनो यवनो गगः । कश्चपश्च पराशरः ।
अष्टाशैते गम्भीराः ज्योतिः शास्त्रप्रवर्तकाः ॥

पराशरस्तु तानित्यं गणयति –

विश्वसृज् नारदो व्यासो वि वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः ।
लोमशो यवनः सूर्यश्च्यवनः कश्यपो भृगुः ॥
पुलस्त्यो मनुराचार्यः पौलि शः शौनकोऽङ्गिराः ।
गर्गो मरीचिरित्येते ज्ञेया ज्योतिः प्रवर्तकाः ॥

इदञ्चाग्रे नारदेन कथितम् –

⁷ ग्राम पत्रालयश्च – घोघरडीहा मंडलम् – मधुबनी (बिहारः)

यज्ञाध्ययनसङ्क्रान्तिग्रहषोडशकर्मणाम् ।
प्रयोजनञ्च विज्ञेयं तत्कालविनिर्णयात् ॥
विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्म न सिद्ध्यति ।
तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा रचितं पुरा ॥
तं विलोक्याथ तत्सूनुर्नारदो मुनिसत्तमः ।
उक्त्वा स्कन्धद्वयं पूर्वं संहितास्कन्धमुत्तमम् ॥
वक्ष्ये शुभाशुभफलज्ञप्तये देहधारिणाम् ।
होरास्कन्धस्य शास्त्रस्य व्यवहारप्रसिद्धये ॥

rfnRFka 'kkL=ka fg czāk ukjnk;] lkse% 'kkSudk;] ukjk; kks ofl" Bk; jkes'kk; p ofl" Bks

ek.MO;okensokH;ka] O;kl% Lof'kO;k;] lw;ksZ e;k;] iqyLR;kpk;ZxxkZf=kjksedk% LoLof'kO;S;H;%

ijk'kjks eS=ks;k; p izksDroUr bfrA

बृहत्संहितायामुक्तम् –

मुनिविरचितमिदमिति यच्चिरन्तं साधु न मनुजग्रथितम् ।
तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमन्त्रके का विशेषोक्तिः ॥
आब्रह्मादिविनिः सृतमालोक्य ग्रन्थविस्तरं क्रमशः ।
क्रियमाणकमेवैतत् समासतोऽतो ममोत्साहः ॥

गर्गाचार्योऽपि –

स्वयं स्वयम्भुवा सृष्टं चक्षुर्भूतं ज्ञिजन्मनाम् ।

वेदाङ्गं ज्योतिषं ब्रह्मपरं यज्ञहितावहम् ।
मया स्वयम्भुवः प्राप्तं क्रियाकाल प्रसाधनम् ॥

अनेन ज्ञायते यद्धि स्वविर्मितंशास्त्रमिदं ब्रह्मा नारदगर्गप्रभूतिनृषीन् प्रोवाचेति ।

निष्कर्षमेतेषामेतदेव यच्छास्त्रमिदं प्रथमं ब्रह्मणा यज्ञप्रवर्तनाय सृष्टम् । तच्च
शिष्यपरम्पराया बुधैर्गृहीतम् । तदेव आर्यभटेन प्रकाशितं वराहमिहिरेण विवेचितञ्च । तेनैव
वराहमिहिरः कथयति –

प्रथममुनिकथितमवितथमवलोक्य ग्रन्थविस्तरस्यार्थम् ।

नातिलधुविपुलरचनाभिरुद्यतः स्पष्टमभिधातुम् ॥

प्रवचनीयस्य शास्त्रस्य वेदोपकारकत्वाद् वेदाङ्गत्वमिति प्रतिपादयति लगधाचार्यः –

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्व्यां विहिताश्च यज्ञाः ।

तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान् ।।

अर्थात् – ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद-ऽथर्ववेदरूपाः मन्त्रब्राह्मणात्मिका वेदा हि विविधानां यज्ञानां

प्रतिपादनाय प्रवृत्ताः सन्ति, यज्ञाश्च वेदेषु कालक्रमानुसारं विहिताः सन्ति, तस्मात्

कालानुपूर्व्ययज्ञानुविधानज्ञानसाधनानुशासनरूपमिदं ज्योतिषं शास्त्रं यो जानाति स यज्ञान् जानाति । एवं च वेदाङ्गमिदं शास्त्रमिति भावः ।

तथा च भास्कराचार्यः –

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालश्रयेण ।

शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्याद्वेदाङ्गत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात् ।।

शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ ।

या तु शिक्षाऽस्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः ।।

वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्योतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते ।

संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाऽङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः ।।

तस्माद्द्विजैरध्ययनीयमेतत् पुण्यं रहस्यं परमं च तत्त्वम् ।

यो ज्योतिषं वेत्ति नरः स सम्यग्धर्मार्थकामाँल्लभते यशश्च ।।

वेदाङ्गेषु ज्योतिषस्य श्रेष्ठत्वं कथयति ग्रन्थकारो यथा –

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।

तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनिस्थितम् ।।

अर्थात् – शिखा यथा मयूराणां मूर्धनि स्थिता भवति, मणयो यथा सर्पाणां मूर्धनि स्थिता भवन्ति, तद्वद्वेद गणितरूपं ज्योतिषं शिक्षा कल्प-व्याकरणादिरूपाणां वेदाङ्ग-शास्त्राणां मूर्धनि स्थितं भवतीत्यर्थः ।

भारतीयविद्यासु ज्योतिषशास्त्रस्य महिमाऽनुपमा वर्तते । वेदस्य षण्णमङ्गानां मध्येऽस्य शास्त्रस्य गणना क्रियते । प्राचीनकाला- देवाऽद्यावधिपर्यन्त नैके आचार्याः अभवन्, यैर्ज्योतिषशास्त्रं न केवलं भारतीयसमाजेऽपितु विश्वस्मिन् भूमण्डले पुपञ्चितं प्रतिष्ठापितञ्च । ज्योतिषस्य प्रशंसां कुर्वन्निर्विद्वद्भिः 'ज्योतिषामयनं चक्षुः, वेदस्य निर्मलं चक्षुः' चेत्यादिवाक्यानि प्रयुक्तानि । कालज्ञानं सभेषां कृते महदावश्यकं वर्तते, ज्योतिषज्ञानं विना कालज्ञानं न सम्भवति । अत एव काल ज्ञानाय सर्वेऽपि ज्योतिषशास्त्रं पठेयुरिति विपश्चिदिर्भयदस्य प्रशंसा

कृतातन्त्रार्थवादाय कल्पते । सिद्धान्तसंहिताहोरा – भेदादस्य शास्त्रस्यत्रिविधत्वमङ्गीकृतम् । उक्तं यथा नारदसंहितायाम् सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम् ।

तत्र हि सिद्धान्तस्य द्वौ स्वरूपौ सिद्धान्तस्तन्त्रञ्च । यत्र यत्र हि कल्पादित एव गणना क्रियते स सिद्धान्तो यत्र च युगादारभ्य सा क्रियते तत्रन्त्रमिति । उभयोरेव द्वौ पादौ प्रत्येकं गणितं गोलश्च । गणितस्य त्रयो भेदाः सामान्यगणितं बीजगणितं ग्रहगणितञ्च । सामान्य (पाटी) गणितस्य द्वौ भेदौ व्यक्तगणितमव्यक्तगणितञ्चेति । यत्र स्कन्धे गणितफलितयोः सामान्येन निर्देशः सर्वविषयकत्वेन सा सङ्ग्रहस्वरूपा संहिता साऽपि चतुष्पदा, ग्रहचार – काल – फलशकुन – स्वर भेदात् । यत्र वैयक्तिकसम्बन्धेन फलादेशः सा होरा । साऽपि पञ्चपदा जातकताजिकरमलप्रश्नस्वप्न भेदात् ।

यत्रहि जन्मकालिक ग्रहाद्यवस्थिति माधारीकृत्य जनस्य भूतवत्तमान भविषु भाशुभफलादेशः क्रियते तज्जातकशास्त्रम् । खस्थानां पिण्डानां भूस्थितैर्जनैः सह सम्बन्धः सहसा न प्रतीतिमायाति । किन्तु तयोरविच्छेद्यः सम्बन्धोऽस्त्येव यथार्थतः ।

ग्रहैर्व्याप्तमिदं सर्वं प्रैलोक्यं सचराचरम् ।

सूक्ष्मावलोकनेनैतत्स्पष्टमेव ज्ञायते यद्यत्प्रकृतिको यस्य जन्मनक्षत्रं तत्स्वामिराशिज्ञत् पतिव्यञ्जनं वत्पनिर्मासएतत्पतिवसिर तिथि तत्पतीव्यादिः तत् प्रकृति क एव जनो भवतीति । यथा हि मेषराशौ जातो जनो जलादविभेत्त्येव । मेषराशेः स्वामी भौमः स च वह्निप्रकृतिको जसविमुखः । एवमेव सिंटस्य स्वामी सूर्यः । तद्राशौ जातो निश्चयमेव पित्तप्रकृतिकोऽल्प वाचश्च भवति । यदि योगान्तरवशात् कस्मिंश्चिन्नापि सर्वाणि लक्षणानि घटैरंस्तथापि स्वल्पमपि जन्म राशि प्रभाव देहे हश्यत एव । एवमेव नक्षत्रादीनामपि । तेन जातक फलादेशात् पूर्व खस्थपिण्डज्ञान मत्यावश्यकं भवति ।

गगने या हि तारका हृश्यते दूरतो दर्शनेन समप्रकृतिवदभ्नास मानास्वपि तासु आम्यन्तरं महदन्तरं विद्यते । तत्र काश्चनातिस्थूलाः, कतिपयास्तु नितान्तकृशाः काश्चिज्ज्योतिर्मया, अपरा ज्योतिर्हीना वा स्वल्प ज्योतिष्काः । काश्चिच्चलनशीला, अपरास्तु सदास्थिराः । गतिमतीस्वपि काश्चिच्छीघ्रगतिता, अपरास्त मन्दगतिता अपि । या हि स्थिरा दृश्यन्ते ता नक्षत्र शब्देन ज्ञायन्ते ऋक्षभशब्दयोर्वा । याहि गतिशीलास्ता ग्रह – खेट –खेचर प्रभृति शब्दैरपि ज्ञायन्ते ।

यथोक्तं पाराशरशास्त्रे –

आकाशे यानि दृश्यन्ते ज्योतिर्बिम्बान्यनेकशः ।

तेषु नक्षत्र संज्ञानिग्रह संज्ञानि कानिचित् ।।
वानि नक्षत्र नामानि स्थिर स्थानानि यानि वै ।
गच्छन्तो यानि गृह्णन्ति सततं ये तु खेचराः ।।

यथोक्तं जातकपारिजाते –

क्रियाद्याः – चक्रस्थिता दिविचरा दिननायसंख्याः क्षेत्रक्षराशिभवनानि भसञ्जितानि ।

दस्त्रादिकर्षनवपादयुताः = अश्विन्यादिनक्षत्राणां नवभिर्नवभिः पादैर्युताः सङ्गताः
(अत्रेदमवधेयं – प्रतिनक्षत्रं चत्वारः पादास्तथा = नवभिः पादैरेको राशिरिति ।
दस्त्रादिसप्तविंशतिनक्षत्राणामण्डोत्तरशतसंख्याकाः पादास्तैर्द्वादशराशयोऽतो नवभिः पादैरेको
राशिरिति युक्तम्) क्रियाद्याः = मेषाद्याः, दिननाथसङ्ख्या दिननायः सूर्यस्तत्संख्या द्वादशमिता
इत्यर्थः “द्वादशात्मा दिवाकर” इत्युक्तेः । दिविचराः = आकाशचारिणो राशयश्च –
क्रस्थिताश्चक्राकारे (वृत्ताकारे) वर्तमाना भसञ्जितानि ।

आधुनिकानां मतानुसारेण –यद्यपि गगनमाविभज्यमेकं विभु चानन्तञ्च । तथापि
ज्योतिष पिण्डस्थित्य ध्ययनाय ज्योतिर्विदभिः समस्तं ज्योतिषचक्रं सप्तविंशतिद्या प्रथमतो विभा –
जितं कैश्चिद्राष्टविंशतिद्याऽपि । ते च प्रत्येकं विभागा यथा प्रकृतिनाम्नाऽव्यादताः त एव
नक्षत्राणि । तानि हि सम्प्रति निरयण मानेन उत्तरे भाद्र पदातः पूर्वा भावुपर्दापर्यन्तानि सायनमानेन
शतमिषातः

धनिष्ठा पर्यन्तानि । तेषामपि प्रत्येकं सन्ति चत्वारः पादाः इति यवन्ति 108 पादा ये
हि नवाङ्क विभाज्या निःशेषत्वेन तेन हि प्रतिनवपादमे को राशिः कल्पितः । राशयो द्वादश सम्प्रति
निरयण मानेन मीनतः सुभ्य पर्यन्ताः सायनयानेन कुम्भतो भकरान्ताः ।

(27 x 4 = 108 = 12) तेषु हि मेष – सिंह – धनुः संज्ञकाः नक्षत्रादितः प्रवृत्ता

9

अन्ये तन्मध्यत एव ।

जातकस्य हि जन्मकाले यो राशिः क्षितिजस्य पूर्व भागे भवति स एव तस्य
लग्नराशिः । तदारभ्य परिगणयन्ते द्वादश राशयः । तत्र तत्र ग्रहाणां भवस्थानमपि निर्दिश्यते ।
चक्रमिदं जन्मकुण्डलीपदेमाभिधीयते । राशयो हि स्वस्य भोगानुसारं पूर्वकमेण भवन्ति ।
सूर्योदयराशित आरभ्य । इत्थं तेषामपि प्रत्यहोरात्रं चक्रं भमति ।

जातकेषु (जातकशास्त्रेषु) पारिजातः (सुरतरुः) (पञ्चैते देवतरवो मन्दारः
पारिजातक इत्यमरः) फलितज्योतिषशास्त्रे जातकपारिजातस्य अतिविशिष्टं स्थानं वक्तव्यं । अस्य
ग्रन्थस्य ग्रन्थकारः दैवज्ञवैद्यनाथ वर्तते ।

एतद्ग्रन्थादौ –

भारद्वाजकुलोद्भवस्य विदुषः श्रीवेङ्कटाद्रेरिह

ज्योतिषशास्त्रविशारदस्य तनयः श्रीवैद्यनाथः सुधीः ।

होरासारसुधारसङ्घविबुधश्रेणीमनः प्रीतये

राशिस्थाननिरूपणादि सकलं वदे यथानुक्रमम् ।।

इत्युक्तवचनेनायं ग्रन्थो भारद्वाजगोत्रोत्पन्न-श्रीवेङ्कटाद्रेरिवैद्यनाथस्य –
श्रीवैद्यनाथदैवज्ञेननिर्मितः । अस्मिन् ग्रन्थे ग्रन्थकर्तुः समयस्यानिर्देशत्वात्स्य निर्माणकालो वास्तवः
क इति तारतम्याधीनः । अयं किलग्रन्थकर्ता वेङ्कटाद्रेरिह, वेङ्कटाद्रेरिह ज्योतिर्विदिति
'श्रीवेङ्कटाद्रे रिह ज्योतिः शास्त्रविशारदस्ये' ति वैद्यनाथोक्तेन स्फुटम् । अतोऽनुमीयते यत्
सर्वार्थचिन्तामणिकार एवायं वेङ्कटः । जातकपारिजाते बहुत्र सर्वार्थचिन्तामणिमूलश्लोकानां
निवेशदर्शनादयमेव वेङ्कटो वैद्यनाथस्य पितेति तर्कः सङ्गच्छते । परञ्च सर्वार्थचिन्तामणावपि
तत्समयस्यादर्शनात् वास्तवोऽस्य समयो न स्फुटः । परञ्च –
ज्योतिःशास्त्रमहार्णवाद्वादहरन्मौहूर्त्ततत्वं बहु – व्याप्यल्पं गुरुवैद्यनाथचरणद्वन्द्वैरतः केशवः' इति
ग्रहलाघवरणकर्तृगणेशदैवज्ञपितृ – (केशव) कृतमूर्त्ततत्त्वोक्तवचनादयं वैद्यनाथो गणेशपितुः
(केशवस्य) गुरुरिति सिद्धयति । तत्र गणेशकृतग्रहलाघवरचरणाकालो 'द्वयब्धीन्द्रोन्मितशकः'
इत्युक्तेन 1442 शकाब्दः । तदानीं केशवस्य वयोयदि 70 वर्षाणि कल्पन्ते तदा केशवस्य
जन्मकालः 1372 शकाब्दः स्यात् । तदानीं वैद्यनाथस्यापि वयः 25 वर्षाणीति कल्पने न
काचिदनुपपत्तिरिति तदा वैद्यनाथस्यग्रन्थरचनाकालः 1347 शकाब्दासन्नः सम्भाव्यते ।

आचार्यवैद्यनाथः – नत्वा गर्गपराशरादिरचितं सङ्गृह्य होराफलं

कुर्वे जातकपारिजातमखिलज्योतिर्विदां प्रीत्ये ।

तथा 'सङ्गृह्य सारावलिमुख्यतन्त्रं करोम्यहं जातकपारिजातम्' । इति वचनेन
इमं जातकपारिजातं प्राचीनार्पग्रन्थानां सारभागं सङ्गृह्यापि च सारावलीबृहज्जातकप्रभृतिका ये
पौरुषजातकग्रन्थास्तेषां सारभूतवाक्यानि सङ्कलश्च रचयामासेति स्फुटम् । वसतुतस्त्वस्मिन्
ग्रन्थे बृहज्जातकस्य मूलभूता एव कियन्तः श्लोका दृश्यन्ते (वियोजनजन्माद्यध्यायः, अरिष्टाध्यायः,
निर्याणविधिः, दशाप्रकरणम् आयुर्द्वयप्रकरणम्) केचन सारावल्याः सर्वार्थचिन्तामणेश्च

मूलश्लोका एवं केषाञ्चन ग्रन्थानां सङ्गृहीताः श्लोकाः क्रियत्पाठभेदेन यथास्थितेन चाचार्येण निवेशिता सन्ति ।

“जातकपारिजातस्य प्रथमाध्याये राशिशीलाध्याये – राशीनां संज्ञाः, कालपुरुषाङ्गे राशिन्यासः, राशीनां स्वरूप-स्थान-आकार-अन्धत्वादिबलाबलादिनिरूपणम्, ग्रहाणांमूलत्रिकोणोच्चनीयराशीनिरूपणम्, दशवर्गनिरूपणं तत् समीक्षणञ्च कृतम् । उक्तञ्च वैद्यनाथेन –

कालात्मकस्य च शिरोमुखदेशवक्षोहृत्कुक्षिभागकाटिबस्तिरहस्यदेशाः ।

ऊरु च जानुयुगलं परतस्तु जङ्घे पादद्वयं क्रियमुखावयवाः क्रमेण ॥

अर्थात् – काल एवात्मा यस्यासौ कालात्मा स एव कालात्मकस्तस्य (कालपुरुषस्येत्यर्थः) क्रियमुखा मेषादयोऽवयवा अङ्गानि क्रमेण सन्ति । के तेऽवयवा इति ? शिरोमुखदेशवक्षोहृत्कुक्षिभागकाटिबस्तिरहस्यदेशाः, ऊरु च जानुयुगलं परतस्तु जङ्घे पादद्वयमिति । मेषः शिरः, वृषो मुखदेशः, मिथुनं (1) वक्षः, कर्को हृदयं, सिंह, उदरं, कन्या कटिः, तुला बस्तिर्नाभिलिङ्गयोर्गव्यदेशः, वृश्चिको लिङ्गं, धनुरु द्वौ, मकरो जानुयुगलं, कुम्भो जङ्घे द्वे, मीनः पादद्वयं चरणयुगलमिति । खत्त्रयोजनञ्चजन्मादौ शुभग्रहाक्रान्तराश्याङ्गे पुष्टिः, पापाक्रान्तराश्याङ्गदेशे वैकल्यञ्च वाच्यमिति । तथोक्तं स्वल्पजातके –

कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत्प्रसवकाले ।

सदसद्ग्रहसंयोगात् पुष्टाः सोपद्रवास्ते च” इति ॥

द्वितीयाध्याये –

प्राच्यपश्चात्यमताभ्यां ग्रहनामस्वरूपगुण भेदादिनिरूपणम्, ग्रहाणां कालात्मत्वादिनिरूपणम्, ग्रहाणां स्वरूपम्, ग्रहाणां शुभाशुभत्वादिनिरूपणम्, सञ्चारदेशानां निरूपणम् ग्रहाणां बाल्यादिवयोनिरूपणम्, ग्रहाणां द्रव्यरत्नवस्त्रादिनिरूपणम्, ग्रहाणां कक्षाक्रमः, दृष्टिकवचारः, स्थानदृग्कालचेष्टानिसर्गबलनिरूपणम्, ग्रहाणां मैत्री विचारः ग्रहेभ्यो विचारणीय विषय निरूपणम्, ग्रहाणां भावनिकपणम्, बालाद्यवस्थानिरूपणम्, जाग्रदाद्यवस्थानिरूपणञ्च समीक्षितानि ।

तद्यथा वैद्यनाथः –

कालस्यात्मा भास्करश्चित्तमिन्दुः सत्त्वं भौमः स्याद्ब्रह्मचन्द्रसूनुर्य

देवाचार्यः सौख्यविज्ञानसारः कामः शुक्रोः खमेवार्कसूनुः ॥

अनेन सूर्यादिग्रहाणामधिकारनिरूपणं क्रियते – कालस्येति । भास्करः सूर्यः, कालस्य = काल – पुरुषस्थात्मा भवति । इन्दुश्चन्द्रश्चित्तमन्तः करणम् । भौमः लः सत्त्वं = बलम् । चन्द्रसूनुः – बुधो वचः = वचनम् । देवाचार्यः – गुरुः, सौख्यविज्ञानसारः = सुखज्ञानपरः । शुक्रः कामः = मदनम् । अर्कसूनुः – शनिर्दुःखं भवति । द्वयोजनञ्च – जन्मकाले तत्तद्ग्रहे बलिनि पुरुषस्य वत्तदधिकृद भावो बलवान् भवति, निर्बले च निर्बल इति । तथोक्तं स्वल्पजातके

“आत्मादयो गगनगैर्बलिभिर्बलवत्रराः ।

दुर्बलैर्दुर्बला ज्ञेया विपरीतं शनेः स्मृतम् ॥” इति ॥

तृतीयाध्याये – जनमाध्याये – वियोजनजन्माननिरूपणम्, गर्भाधान विधिः, गर्भसम्भवयोगविचारः, स्त्रीणां ऋतु-कालविचारः, वलीबयोग विचारः, यमलयोगविचारः, सर्पवेष्टित जन्मयोगविचारः पितृपरोक्षेजन्मयोग विचारः प्रसवादिफालिक ज्ञानादीनां प्राच्यपश्चात्यमतेन विवेचनं विहितम् ।

चतुर्थाध्याये – प्राचीनार्वाचीनां मतेन अरिष्ट विचार, बालारिष्टविचार, पित्रादीनां अरिष्टयोग विचार, अत्यायु – मध्यमायु – दीर्घायुयोगं विचार, अरिष्टभङ्ग विचारा दयो समीक्षिताः । उक्तञ्च बृहज्जातके बराहः

“क्षीणे हिमगौ व्ययगे पापैरुदयाष्टमगैः ।

केन्द्रेषु शुभाश्च न चेत्क्षिप्रं निधनं प्रवदेत् ॥

षष्ठाध्याये – जातकभङ्गाध्याये राजय योगा भिक्षु-रेका-दरिद्र-रोग-अंगहीन योगादीनां विवेचनं समीक्षणपुरुसरं निरूपितम् ।

सप्तमाध्यायः – राजयोगाध्यायः – तत्र सामान्य – विविध – राजयोग पञ्चमहापुरुष – सुनफाऽफा दुरुधरा – केमद्रुमयोग – अधियोग – वासि – वेशी – उभय चरिक् – गजकेशरी – नाभस राजयोगादीनां समीक्षणं प्रदर्शितम् ।

अष्टमाध्याये – द्वादिग्रहयोगाध्याये – द्विग्रहयोगाः, त्रिग्रहयोगाः, चतुर्ग्रहयोगाः, पञ्चग्रहयोगाः, षड्ग्रहयोगाः, मेषादिसशिश्वग्रहफलम्, तन्वादिद्वादशभावगत ग्रहफल निरूपणं समीक्षणञ्च कृतम् ।

नवमाध्याये – अष्टकवर्गाध्याये – ग्रहाणां शुभविन्दुसङ्ख्यानिरूपणम्, अष्टकवर्गे विन्दुपरत्वेन भावफल निरूपणम्, सूर्याष्टक – चन्द्राष्टक – भौमाष्टक – बुधाष्टक – गुर्वष्टक – शुक्रा-ष्टक – चन्द्राष्टक – भौमाष्टक – बुधाष्टक – गुर्वष्टक – शुक्रा – ष्टक – शन्यष्टक

वर्गफल समीक्षणम्, अष्टकवर्गप्रस्तारक – समीक्षणम्, अष्टकवर्गत्रिकोणशोधनम्, एकाधिपत्य – शोधनम्, अष्टकवर्गायुः साधनम्, समुदायाष्टक – वर्गादि निरूपणं तत् समीक्षणञ्च विजिहतम् ।

दशमाध्याये – भावफलाध्याये: – तन्वादिद्वादश भावफलानां समीक्षणं, तेषां विचारणीय विषयाणां समीक्षणञ्च प्रतिपादितम् । उक्तञ्च –

अक्तञ्च –

“नीचस्थो रिपुराशिस्थः खेटो भाव विनाशकः ।

मूलस्व तुङ्गमित्रस्थो भाववृद्धिकरो भवेत्” ।।

अर्थात् – स्वनीचराशौ शत्रुराशौ वा स्थितो ग्रहो यस्मिन् भावे विद्यमानः स्यात् स ग्रहस्तस्य भावस्य विनाशको भवति । एवं स्वमूलत्रिकोणे, स्वराशौ, स्वकीयोच्चे, स्वमित्रगृहे वा स्थितः सन् यस्मिन्भावे स्थितो भवति तस्य भावस्यासौ ग्रहो वृद्धिकरो भवति ।

एकादशाध्याये – स्त्रीजातकाध्याये – स्त्रीजन्मनिफलकथन – समीक्षणम्, लग्नेन्दुवशातस्त्रीफलसमीक्षणम्, कुलटायोग – निरूपणम्, साध्वीयोगनिरूपणम्, स्त्रीजातके प्रव्रज्यायोगनिरूपणम्, स्त्रियावैधत्ययोगविवेचनम्, सौभाग्यनिरूपणञ्च प्रदर्शितम् ।

द्वादशाध्याये – दशाफलाध्याये: दशान्तर्दशाफलानि समीक्षितानि, शुभाशुभत्वविवेचनम् त्रयोदशाध्यायः उपसंहारात्मकोऽस्ति । तथान्ते शोधसहायकग्रन्थानां सूची भविष्यति ।

संदर्भग्रन्थाः-

1. जातकपारिजातः वैद्यनाथ विरचित / व्या० चौखम्भासूरभारती प्रकाशन
हरिशंकर पाठक वाराणसी सं० – 2001
2. जातकपारिजातः वैद्यनाथ कृत / पं० चौखम्भासंस्कृतसंस्थान,
कपिलेश्वर शास्त्रिणा वाराणसी वि० सं० – 2053
3. खेटकौतुकम् अब्दुलरहीम खानखाना / चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी
नारायणदास संस्कृत – 2000
4. जातकपारिजातः गोपेश कुमार ओझा मोतीलालबनारसीदास,
संस्करण – 2004

5. सरावली कल्याणवर्मकृत / डॉ० मोतीलाल बनारसी दास,
मुरलीधर चतुर्वेदी संस्करण – 2003
6. बुद्धयवनजातकम् आचार्य मीनराज विरचितम् रंजन पब्लिकेशन्स 16, अंसारी
/ डॉ० सुरेश चन्द्र मिश्र रोड दरियागंज, नई दिल्ली, सं०
– 2000
7. जतकसारदीप श्री नृसिंहदैवज्ञ कृत/ डॉ० रंजन पब्लिकेशन्स 16, अंसारी
सुरेश चन्द्रमिश्र रोड, दरियागंज, नई दिल्ली –
संस्करण – 2001
8. सर्वार्थचिन्तामणिः श्री वेंकटेशशर्म प्रणीतः / चौखम्बा सुर भारती प्रकाशन,
आचार्य गुरुप्रसाद गौड़ वाराणसी संस्करण – 2006
9. मानसागरी आचार्य श्रीमधुकान्त झा चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी,
संस्करण – 2000

साम्प्रतिककाले ज्योतिषशास्त्रस्योपयोगिता

कृष्णकुमारमिश्रः^१

शोधसारः

समेपां ज्ञाताज्ञातानां ज्ञातव्यानां न च ज्योतिषशास्त्रविषयाणां

साम्प्रतिके महती चोपयोगिता वर्तते । त्रिास्कन्धज्योतिषशास्त्रस्य गणितपफलितविषयाः व्यवसायान्वेषणस्तानां युनां कृते बहुविधव्यवसायक्षेत्राणि दातुं सक्षमाः सन्ति । ते च युवकाः वास्तुसागुदिकस्वशकुनजातकताजिकप्रश्नगुह्यज्ञानविशेषज्ञा भूत्वा प्रतिदिनं सहस्राधिकं रुप्यकारण्यार्जयितुं प्रभवा भविष्यन्ति । सर्वकारस्य चापि महती समस्या समाधनिता भविष्यति । पुनश्चैतेन ज्योतिषशास्त्रस्यापि इहलोकपरलोकसम्पुल्लक्ष्यं सार्थकं भविष्यतीतिमेगीति ।।

''प्रयोजनमनुदिश्य मन्दोपि न प्रवर्तते'' अतएव सि(ान्तिशिरोमणो भस्कराचार्यणोक्तं -

वेदास्तावद्ब्रह्मप्रवृत्ताः यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालश्रयेण।

शास्त्रादसमात्काबोधे यतः स्याद्वेदात्वं ज्योतिषस्योत्तमस्मात्।।

ज्योतिषं ग्रह नक्षत्रादीनां बोधशास्त्रमस्ति, अतएव ज्योतिषमतां पदार्थानां अध्ययनं क्रियते। वस्तुनस्त्र ग्रहनक्षत्राणां पृथिव्या द्रुववर्तित्वं, तेषां प्रकाषाकर्षणादिबोधः, मानवादि प्राणिनामुपरि तेषां प्रभावः, तद्ग्रहेण संसास्य शुभाशुभफलपरीक्षणं ग्रहण, श्रु गोन्ति, ग्रहोदयास्त, छाया, देशान्तराणांसादि ज्ञानं च साधुनया बेधदि विधाक्रियते। वेदा गत्वात् अस्याध्यनोधापनं न केवलं ज्ञानाय अपितु धर्मिक दृष्ट्यापि भवतिस्म । उत्तफञ्च गर्गः -

ज्योतिषचक्रे तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभम् ।

जयोर्तिज्ञानं तु यो वेद स याति परमां गतिम्।।^१

अपि च-

''यो ज्योतिषं वेत्ति नरः स सम्यग्धर्मार्थमोक्षाल्लभते यशश्चा।।''

अस्य शास्त्रस्य सर्वप्रथम विषयः ग्रहस्पष्टीकरणमेव कथन्तु अन्यैव भूतभविष्यवर्तमानकालस्यगुणग्राहान्त्वमर्मज्ञानं, शुभा(शुभफलनिर्णयञ्च सम्भवति।

आधुनिके वैज्ञानिके पाश्चात्यसभ्यतासंस्कृति चाकचिक्व युगफे युगेऽपि, यदा तु चन्द्रादि ग्रहनक्षत्रादीनामुपरि कतिपयेऽपिनेके वैज्ञानिकाः गत्वा स्वलौहस्वीकारमकार्या स्मिलं जगतः ज्योतिर्वा मयस्य तदेव स्थानं सुरक्षितमस्ति, यादृमासीत् वर्षसहस्रा(निकपूर्वम् ।

अधुना प्रकृतशास्त्रस्य प्रकाण्डपण्डितस्य गणिताचार्यस्य भस्कराचार्यस्य शून्या(विष्कास्य समग्रे विश्वे आध्मर्ण्य स्वीकरोति, महा पुकरोति च शून्यः 'साइन्स ऑफ टेक्नोलॉजी' क्षेत्रे । यस्यैव प्रसादे वैज्ञानिकानां सकलाभ्युदयं केन्द्रितं यत् मुत्तफकण्टेनाभिनन्दन्ति सर्वे जनाः। व्यनतफु कश्चित् ज्ञानविज्ञानशून्योह्याधुनिकोजनः, 'पुर्णान्धविशवासमिथ्या संस्कृत शास्त्र, तथापि सोऽपि ज्योतिषस्य गणनां नापलपितुं समर्थः स्यात् एतावत् महत्त्वमादधत्तं विजयते व्यजयत विजेयते चैवं सर्वं चतुस्रं भवति ।

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभा(शुभं तस्य कर्मणः पंतिफम् ।

व्यंजयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्यानि दीप इव ।।^{१०}

^१ कामेश्वरसिंहदरभंगासंस्कृतविश्वविद्यालय, दरभंगा

^१ शब्दकल्पद्रुमद्वितीय काण्ड पृ१ सं०550 मोतीलाल वणारसी दास शलघुजातकम् अ०- 1९७० सं०-3

प्राणिनां यदयजन्मनि शुभमशुभं वा कर्माजितं सञ्चितं तस्य कर्मणः प्राप्तमेतच्छत्रं व्यंजयति प्रकटीकरोति । यस्मिन् काले शुभफलं यस्मिंश्चातो(शुभमिति ।कः इव दीप इव।यथा दीपस्तमसि अश्कारं द्रव्याणि विद्यमानानि व्यंजयति व्यवहारार्थं ।

गायत्रीतो जगतीवृत्तपर्यन्तमाकाशव्यवस्थायाः पूर्वाभिमुखं क्रमेण द्वादशभागा एव कृण्डल्यां लम्नादिद्वादशभावानां सञ्ज्ञया प्रसि(ः। तत्र पूर्वस्वास्तिकं लम्नं, पश्चिमस्वस्तिकं सप्तममूर्ध्वस्वस्तिकं दशममधः स्वस्तिकञ्च चतुर्थभाव द्योतयति संकेतयति वा । पूर्वीक्ता द्वादकाशभागाः स्व मेपादिगणिसंज्ञकाः अपि। देहद्रव्यपराक्रममुन्नसुतादिविषयप्रतिपादकेषु द्वादशभावेषु यदाध्यात्मिकाद्वैविकाधैकैकर्मिग्रलमनुचिन्तनमन्तर्हितमस्ति । तदग्रिलं गायत्र्यादिवृत्तग्रह्यानां भावान्तरगाकाशांशप्रभावप्रकाराणां ग्रहनक्षत्रदीनां विविधकोणैः पतिगणितप्रभावानामाधरेण शाश्वतमिति वक्तुं शक्नुमः । लोकोपयोगिदृष्ट्या एतैर्भविः भूतभविष्यद्वर्तमानकालिकं चिन्तनं, कर्मक्षेत्रनिर्घरणमजीविकाविशयं दैहिकदैविकभौतिकतापत्रयलक्षणं वाचपित्तकफादिकृदग्रिलंगेगल क्षणज्ञानमुपचागदर्शनं किमधिकं जन्मनो मरणपर्यन्तमग्रिलं यत्किमप्याचरितं तस्य त्रैकालिकफलं कृण्डल्यां विशदेन विमृष्टुं शक्नुमः ।

विस्कन्धज्योतिषान्तर्गत-व्यावसायिकक्षेत्रेषु कतिपयोगिविषयाणामधुना संक्षिप्तदर्शनं कर्मः ।

:1दृ कृषिक्षेत्रम्

कृषिप्रथमदेशेऽस्मिन् सर्वे वृष्ट्याधरितं वर्तते। ज्योतिषशास्त्रानुसारेण चन्द्रोयदा जलचरसाथी जलचरनक्षत्रे च भवेत्तदा वृष्टिर्भवति ।^{११} आधुनिकाः पाश्चात्याः असमयवृष्टिप्रचलननिगरकरणदिविधेनु समाचरन्ति वस्तुनस्ते विध्योऽपि अस्माकं संहितासाम्ने प्रतिपादिता सन्ति ।भद्रवसंहितायां शुक्राचार्याये शुक्रगत्या वृष्टिनिराकरणविषयःप्रतिपादितो वर्तते।

ग्रहप्रकृत्यनुगुणं कृषिकरणेन वृक्षवपनेन च महल्लाभो भवतीत्यग्रिलं त्वस्माकं कृषकवर्गोऽपि जानाति किमधिकं विज्ञेषु ।

:2दृ कर्मक्षेत्रनिर्देशनम्

आजीविकाकर्मक्षेत्रान्वेषणपटवो बटवः सम्प्रति सर्वत्र समुपलभ्यन्ते । ज्योतिषशास्त्रप्रतिपादितकर्माकर्मजीविकाद्रव्यावाप्त्युपायानां मार्गनिर्देशनाधरेण ते स्वाजीविकाक्षेत्रं विनिश्चित्य लाभाचित्ता भवन्ति । ग्रहानुगुणमेव चालिता व्यवसायाः सफलतां प्राप्नुवन्ति सम्पुञ्ज्य यच्छन्ति। यथा-

अर्कांशे तृणकनकोर्णभेषजावै-

श्चन्द्रांशे कृषिजलजाचनाश्रयाञ्च ।

धत्वग्निग्रहरणसाहसैः कुजांशे

सौम्यांशे लिपिगणितादिकाव्यशिल्पैः ।।^{१२}

जीवस्य द्विविबुधगमादिधर्मैः

शुक्रांशे मणिरजतादिगोमहिष्यैः ।

सौंशांशे श्रमवध्मारानीचशिल्पैः

कर्मेशाधुषितसमानकर्मसि(िः ।।^{१३}

^{११} बृहत्संहिता, गर्भलक्षणध्याय श्लो. 29 ।

^{१२} बृहज्जातक अ 10, श्लो. 2 ।

^{१३} तत्रैव ,, ,, ,, ,, 3 ।

उद्भवास्तुश्रेत्रम्

ज्योतिषशास्त्रस्या वास्तु विज्ञानं सम्प्रति महत्वपूर्णं शास्त्रं विद्यते । दिगन्तुसंज्ञे
ग्रहनक्षत्रप्रभावश्रेत्रातुगंघ्रे च
शयनागारकोशधन्यसंग्रहणरत्नस्थापनपाकशालापुत्रास्थलाध्यवसायोत्सर्गकक्षाणां निर्माणेन ते
बहुकालपर्यन्तं गृहवास्तव्यानां कृते श्रेयसम्पादका भवन्ति । सकलैश्वर्यप्रदायकं
फुषार्थचतुष्टयसाधकञ्च गृहं वास्तुशास्त्रनियमानुगुणव्यवस्थया सर्वजनानां कृते विशेषानन्ददायकं
भवति । उक्तञ्च राजवल्लभमण्डने -

स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजनन धर्मार्थकामप्रदम् ।

जनूनामयनं सखास्सपदमिदं शीताम्बुघर्मापहम् ॥

वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते ।

गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुध श्रीविश्वकर्मादयः ।

अपि च -

“चतुर्वर्गफलप्राप्तिसल्लोकश्च भवेद्भुवम्” 14

अथ च सामाजिक सन्तुलने व्यक्तिविवेचनेऽपि ज्योतिषशास्त्रस्य महती योगदानं अस्ति । उक्तञ्च
लघुजातके -

गुरुशशिवयः सत्त्वं रजः सितज्ञो तमोऽर्कसुतभौमौ ।

एतन्तेरात्मनि जन्तोः स्वां प्रकृतिं प्रयच्छन्ति ॥

एवं विधे वर्णितेन स्पष्टमिदं वक्तुं प्रभवामो यज्ज्योतिः शास्त्रस्य साम्प्रतिके सार्थकता चिरन्तना
श्लाघ्यतमा च वर्तते । लोकोपयोगितामवलोक्य विद्वांसो भणति यत्-

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।

तद्वद्वेदाशास्त्रां ज्यौतिषं मूर्ध्नि संस्थितम् ॥¹⁵

14 विश्वकर्मा वास्तुशास्त्राम् 2 / 33

ग्रहमैत्रीविचारः सत्यानन्दज्ञा

शोधसारः

अथ सर्वे ग्रहाः अहर्निशं भ्रमणशीलाः सन्ति । तत्रा भ्रमणकाले कस्यचिदेकस्य ग्रहस्य
अपरग्रहकिरणानि अनुकूलानि तदन्यग्रहकिरणानि प्रतिकूलानि ततोऽप्यन्यग्रहकिरणानि समानि
च भवन्ति । तदेवानुकूलता प्रतिकूलता समता च क्रमशः मित्राता शत्रुता समताशब्देन कथ्यन्ते ।
सेयं द्विविध भवति - नैसर्गिकी तात्कालिकी च । तत्रा प्रथमं नैसर्गिकमित्रादिविचारः
प्रस्तूयन्ते-

1. मित्राम् - सूर्यादिसमेषां ग्रहाणां स्वकीयमूलत्रिकाणभवनात् द्वितीय-
द्वादशयोश्चतुर्थाष्टमयोः पचनवमयोश्च स्वामिनो ग्रहा स्वोच्चराशिस्वामिग्रहाश्च
मित्राणि भवन्ति ।
2. शत्रुः - ग्रहाणां मूलत्रिकाणभवनात् उक्तस्थानेभ्योऽतिरिक्तस्थानस्वामिनोऽर्थात् प्रथम-
तृतीय-षष्ठ-दशम-एकादशभावस्वामिनो ग्रहाः शत्रावः भवन्ति ।
3. समः - राशिद्वयाधिपस्य यस्य ग्रहस्यैकराशिर्मित्रामपरराशिश्च शत्रुः स ग्रहः समो
भवति ।

=====

इत्येव सत्याचार्योक्तसि(न्तः समेषां वराहमिहिरप्रभृतीनामाचार्याणां मान्यः । तथाहि
सत्याचार्यः¹⁵ -

सुहृदस्त्रिकाणभवनाद् ग्रहस्य

सुतभे व्ययेऽथ धनभवने ।

स्वजने निधने धने

स्वोच्चे भवन्ति नो शेषाः ॥

तथा चोदाहरणं यथा - सूर्यस्य मूलत्रिकाणराशिः सिंहस्तस्माद् द्वितीय-द्वादशयोः
कन्या-कर्कयोः स्वामिनौ बुधचन्द्रौ, चतुर्थाष्टमयोः वृश्चिकमीनयोः स्वामिनौ मंगलगुरु,
पञ्चममयोः धनुमेषयोः स्वामिनौ गुरुमर्षौ च सूर्यस्य मित्राणि भवन्ति ।

द्वितीयनियमानुसारं सूर्यस्य मूलत्रिकाणराशिसिंहात् तृतीय-षष्ठयोः तुलामकरयोः
स्वामिनौ शुक्रशनिश्चरौ दशमैकादशयोः वृषमिथुनयोः शुक्रबुधे च शत्रावः भवन्ति ।

तृतीयनियमानुसारं राशिद्वयाधिपस्य बुधस्यैकराशिः कन्यासूर्यमित्राराशिरपरश्च
मिथुनराशिः शत्रुराशिः अत एव बुध सूर्यस्य समो भवति । एवमेव समेषां ग्रहाणां बोध्यम् ।

एतावता सूर्यस्य चन्द्र-गुरु-कुजाः मित्राणि शुक्रशनिश्चरौ च शत्रू बुध समश्च । तदेतत् समेषां ग्रहाणां मैत्रीचक्रमत्रावलोकनीयम्-

नैसर्गिकमैत्रीचक्रम्			
ग्रहाणाम्	मित्राणि	शत्रावः	समाः
सूर्यस्य	चन्द्रः, मंगलः, गुरुः	शुक्रः, शनिः.	बुधः
चन्द्रस्य	सूर्यः, बुधः	-	मंगलः, गुरुः, शुक्रः, शनिः
कुजस्य	सूर्यः, चन्द्रः, बुधः	गुरुः	शुक्रः, शनिः
बुधस्य	सूर्यः, शनिः	चन्द्रः	मंगलः, गुरुः, शनिः
गुरुः	चन्द्रः, मंगलः, सूर्यः	शुक्रः, चन्द्रः	शनिः
शुक्रस्य	बुधः, शनिः	सूर्यः, चन्द्रः	मंगलः, गुरुः
शनेः	शुक्रः, बुधः	सूर्यः, चन्द्रः, मंगलः	गुरुः

तदुक्तं वराहेण¹⁵ -

शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवेः
तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदौ शेषाः समा शीतगोः ।
जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्ञोरि सितार्की समौ
मित्रो सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुः समाश्चापरे ॥
सूरेः सौम्यसितावरी रविसुतो मध्येऽपरे त्वन्यथा
सौम्यार्कौ सुहृदौ समौ कुजगुरु शुक्रस्य शेषावरी ।
शुक्रज्ञौ सुहृदौ समः सुरगुरुः सौरस्य वान्येऽरियो
ये प्रोक्ता सुहृदस्त्रिकोणभवनात्तेऽभी मया कीर्तिता ॥

ये प्रोक्ताः सुहृदयस्त्रिकोणभवनादित्युक्त्वा सि(मिदं यत् सत्याचार्यमतमेव वराहेण प्रपञ्चितम् । तदेव बृहत्पाराशरहोरायाम् -

रवेः समोऽज्ञः सितसूर्यपुत्रावरी परे ते सुहृदो भवेयुः ।
चन्द्रस्य नारी रविचन्द्रपुत्रौ मित्रो समाः शेषनभश्चराः स्युः ॥

समौ सितार्की शशिजश्च शत्रुमित्राणि शेषाः पृथिवीसुतस्य ।
शत्रुः शशी सूर्यसितौ च मित्रो समाः परेस्युः शशिनन्दनस्य ॥
शुरोर्ज्ञशुक्रो रिपुसंज्ञकौ तु शनिः समोऽन्ये सुहृदो भवन्ति ।
शुक्रस्य मित्रो बुधसूर्यपुत्रौ समौ कुजायावितरावरी तौ ॥
शनेः समो वाक्पतिरिन्दुसूनुशुक्रौ च मित्रो रिपवः परेऽपि ।
ध्रुवं ग्रहाणां चतुराननेन शत्रुत्वमित्रात्वसमत्वमुक्तमम् ॥¹⁵

कल्याणवर्मणा -

मित्राणि सूर्यादगुरुभौमचन्द्राः सूर्योन्दुपुत्रो रविचन्द्रजीवाः ।
भानुः सशुक्रः शशिसूर्यभौमाः मन्देन्दुजो शुक्रबुधै क्रमेण ॥
शुक्रार्कजौ चन्द्रमसो न कश्चित्सौम्यः शशी शुक्रबुधै रवीन्दू ।
सोमार्कवक्रा रवितस्त्वमित्रा मित्रारिशेषो न सुहृद् शत्रुः ॥¹⁵

रामाचार्येण -

मित्राणि द्युमणेः कुजेज्यशशिनः शुक्रार्कजौ वैरिणै
सौम्यश्चास्य समो विधेर्बुधवी मित्रो न चास्य द्विषत् ।
शेषाश्चास्य समाः कुजस्य सुहृदश्चन्द्रेज्यसूर्या बुध
शत्रु शुक्रशनी समौ च शशभृत्सूनोः सिताहस्करौ ॥
मित्रो चास्य रिपुः शशी गुरुशनिक्षमाजः समा गीष्पते-
र्मित्राण्यर्ककुजेन्दवो बुधसितौ शत्रू समः सूर्यजः ।
मित्रो सौम्यशनी कवेः शशिरवी शत्रू कुजेज्यौ समौ
मित्रो शुक्रबुधशनेः शशिरविक्षमाजा द्विषोऽन्यः समः ॥¹⁵

वैद्यनाथेनापि च

मित्राणि भानोः कुजचन्द्रजीवाः शत्रू सितार्की शशिजः समानः ।
चन्द्रस्य मित्रो दिननायकज्ञौ समा गुरुक्षमाजसितासिताः स्युः ॥
आरस्य मित्राणि रवीन्दुजीवाश्चान्द्री रिपुः शुक्रशनी समानौ ।
सूर्यासुरेज्यौ सुहृदौ बुधस्य समाः शनीज्यावनिजास्त्वरिन्दुः ॥
सूर्यारचन्द्राः सुहृदस्तु सूरेः शत्रू सितज्ञौ रविजः समानः ।
मित्रो शनिज्ञौ भृगुनन्दनस्येन्द्रिनावरी जीवकुजौ समानौ ॥

मन्दस्य सूर्येन्दु कुजाश्च शत्रावः समः सुरेज्यः सुहृदौ सिन्दुदुजौ ।।¹⁵

इति समादृतम् ।

केवल यवनेश्वरस्य मतं महर्षिवराहेण पृथक् प्रतिपादितमुपलभ्यते । तथाहि—

जीवो जीवबुधै सितेन्दुतनयौ व्यर्का विभीमाः क्रमाद् ।

वीन्द्रर्का विकुजेन्द्रिजाश्च सुहृदः केषाञ्चिदेवं मतम् ।।¹⁵

अर्थात् सूर्यस्य बृहस्पतिः, चन्द्रस्य गुरुबुधै, कुजस्य बुधशुक्रौ, बुधस्य सूर्यम्बिहाय सर्वे ग्रहाः शनैश्चरस्य भौमं सूर्यं चन्द्रं च विहाय सर्वे ग्रहाः मित्राणि, तदितरे च ग्रहाः शत्रावः । इति केषानिचद् अर्थात् यवनाचार्याणां मतम् । मतेऽस्मिन् मित्राणि शत्रावश्चैव भवन्ति न तु समाः । इति ।

तात्कालिकमित्रादिविचारः

यस्मिन् भावे यो ग्रहस्तस्मात् द्वितीय—द्वादश—तृतीय—एकादश—चतुर्थ—दशमभावस्थिताः ग्रहाः मतान्तरेणोच्चराशिस्थिताः ग्रहाः मित्राणि, तदतिरिक्तभावस्थिता अर्थात् पञ्चम—षष्ठ—सप्तम—अष्टम—नवमभावस्थिताः ग्रहाः शत्रावश्च भवन्ति । तथाहि —

अन्योन्यस्य धनव्यायसहजव्यापारबन्धुस्थिता

तत्काले सुहृदस्त्वतुर्धैर्भवनेऽप्येकेऽस्यस्त्वन्यथा ।।¹⁵

इत्येतावता द्विविध मित्राताः शत्रुता च जाता—प्रथमा नैसर्गिकी, या सर्वेषु जन्मकुण्डलीषु प्रश्नकुण्डलीषु च समाना भवति, द्वितीया—तात्कालिकी, या प्रतिजन्मकुण्डल्या भिन्ना—भिन्ना एव भवति । एवं चोभयोः मेलनेन पञ्चम मैत्री भवति । तद्यथा—

1. अधिमित्रम् — यो ग्रहः उभयत्रा मित्रमर्थात् नैसर्गिकमित्रां तात्कालिकमित्राञ्च तदधिमित्रम् ।
2. मित्रम् — यो ग्रहः एकत्रा मित्रमपरत्रा समस्तमित्रम् ।
3. शत्रुः — यो ग्रहः एकत्रा समोपरत्रा शत्रुस्तच्छत्रुः ।
4. समः — यो ग्रहः एकत्रा मित्रमपरत्रा शत्रुस्तत्समः ।
5. अधिशत्रुः — यो ग्रहः उभयत्रा शत्रुस्तदधिशत्रुः ।

तथैवोक्तमपि —

मेषूरणाम्बुसहजायधनव्ययेषु

यो यस्य तिष्ठति स तस्य सुहृत्तदानीम् ।

अन्येषु वैरुभयथारिसुहृत्त्वयोगाज्

ज्ञेयो ग्रहोऽस्मिन्सुहृदध्यसुहृत् समश्च ।।¹⁵

इत्थेवं ग्रहाणां मित्रा—सम—शत्रुविचारः समासतः सम्पदः । अस्मिन् विषये विशेषविवेचना ग्रन्थान्तरेष्वन्वेषणीयास्ति । विस्तारभयाऽहावर इति ।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. जातकपारिजात, श्रीदेवज्ञवैद्यनाथ, श्रीमातृप्रसादशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2004
2. मुहूर्तचिन्तामणि, श्रीमद्रामदेवज्ञ, डॉ. ब्रह्मानन्दत्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीयसंस्करण, 2000
3. बृहज्जातकम्, श्रीवराहमिहिर, डॉ. रामचन्द्रपाठक, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, वि. सं. 2063
4. बृहत्पराशरहोराशास्त्रम्, श्रीपराशरमुनि, दैवज्ञ पं. देवचन्द्रज्ञा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, वि. सं. 2069
5. सर्वार्थचिन्तामणि, श्रीवेद्यङ्कटेशशर्मा, गुरुप्रसादगौड़, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011
- 6- सारावली, श्रीमदकल्याणवर्मा, डॉ. मुरलीधरचतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 2003

औपनिषद् अद्वैत विमर्श वेदव्रत

शोधसार

उपनिषद् अध्यात्मविद्या अथवा ब्रह्मविद्या के प्रतिपादक शास्त्रा व तत्त्व ज्ञान का कोष है। उपनिषद् उपसर्गपूर्वक **षद्लु विशरणगत्यवसादनेषु** धतु से विवप् प्रत्यय करने पर उपनिषद् शब्द निष्पत्ता होता है। षद्लु धतु के विशरण, विनाश, गति, ज्ञान, गमन और प्राप्ति तथा अवसादन, शिथिल करना, तीन अर्थ हैं। सद् धतु के इन अर्थों के आधार पर उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार से करते हैं—

उपनिषदयति सर्वानर्थकरसंसारं विनाशयति, संसारकारणभूतामविद्यां च शिथिलयति, ब्रह्म अवगमयति इति उपनिषद्⁶ अर्थात् औपनिषद् ज्ञान सकल अनर्थों के जनक संसार का विनाश करता है, संसार के कारणभूत अज्ञान को शिथिल करता है तथा ब्रह्म का बोध और प्राप्ति कराता है। अध्यात्म-विद्या की अक्षय एवं अनन्त निधि उपनिषद् का सार तथा वेदों में निहित गूढ़-रहस्यों का सरल एवं सरस प्रतिपादन है। वेदों का सार होने से इन्हें वेदान्त भी कहा जाता है। सकल-विद्याओं की मूल होने के कारण अनादि-निधना वेदवाणी का गौरव प्रसिद्ध ही है।

=====

यद्यपि जिस प्रकार से इक्षुदण्ड की अपेक्षा उसके सारभूत शर्करा-सिता आदि में मधुरता की मात्रा अधिक होती है, उसी प्रकार वेदों की अपेक्षा उसके सारभूत उपनिषदों में मधुरता अधिक है तथापि उपनिषदों के मूल होने से वेदों का महत्त्व अत्यन्त अनुपेक्षणीय है। जिस प्रकार से इक्षुदण्ड के अभाव में शर्करा-सिता की उत्पत्ति असम्भव है, उसी प्रकार वेदों के अभाव में उपनिषदों की उत्पत्ति भी असम्भव है।

मानव-जीवन का परमलक्ष्य निःश्रेयस को प्राप्त करना है। त्रिविध दुःखों का आत्यन्तिक एवं ऐकान्तिक अभाव ही निःश्रेयस है। जीव के दुःखों का मूल कारण शोक-मोह-राग-द्वेषादि मानसिक विकार ही हैं। शोक-मोह-राग-द्वेषादि का कारण अज्ञान है—

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः। गीता 5/15

प्रत्येक वस्तु से सम्बन्ध (अयथार्थ-ज्ञान, अज्ञान, पुरुष-भेद से भिन्न-भिन्न हो सकता है किन्तु उसका यथार्थ ज्ञान पुरुष-भेद होने पर भी अभिन्न अथवा एक ही होगा। यथा स्थाणु का अयथार्थ ज्ञान भिन्न-भिन्न मनुष्य को मनुष्य, चोर, सिपाही आदि के रूप में हो सकता है किन्तु पुरुष-भेद होने पर भी उसका यथार्थ ज्ञान स्थाणु के रूप में ही होगा। अज्ञान के कारण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

अकर्ता, शु-बु-मुक्त, जन्म-मरणरहित, सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म से अभिन्न जीव अज्ञान के कारण अपने यथार्थ स्वरूप को भूलकर अपने आप को कर्ता, भोक्ता, जन्म-मरणार्थी एवं ब (समझने लगता है। निज अज्ञान से उत्पन्न मिथ्या जगत् में पफँसकर जन्म-मरण के पाशचक्र में संसरण करता हुआ जीव अनन्त दुःखों का उपभोग करता है। इस प्रकार जीव के सकल दुःखों का मूल अज्ञान ही है। अज्ञान की निवृत्ति से ही त्रिविध दुःखों का अभाव सम्भव है—

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शु(सत्त्वाः।

ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।। मुण्डकोपनिषद् 3/2/6

तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धैरा आनन्दरूपममृतं यद् विभाति। मुण्डकोपनिषद् 2/2/7

सहायकाचार्य, पी0जी0 कॉलेज, लोहाघाट, चम्पावत

अज्ञान के कारण ही ब्रह्म में जगत् का अथवा अद्वैत में द्वैत का आभास होता है। उपनिषदों में अध्यारोपाववाद के द्वारा अज्ञाननिवृत्त्यर्थ जीव-ब्रह्मैक्य के प्रतिपादन के साथ-साथ सकल चराचर संसार के मिथ्यात्व का प्रतिपादन भी हुआ है। **अध्यारोपाववादाम्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते।** जिस प्रकार अन्धकार के कारण रज्जु में सर्पत्व की मिथ्या-प्रतीति हो जाती है, इसी प्रकार अज्ञान के कारण ब्रह्म में जगत् की मिथ्या प्रतीति होने लगती है। वस्तुतः परब्रह्म से भिन्न कोई भी पारमार्थिक सत्ता है ही नहीं। द्वैत की अनुभूति मायाजनित है—

प्रपञ्चो यदि विद्येत निवर्तत न संशयः।

मायामात्रामिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः। माण्डूक्यो0 गौडपाद कारिका 17

कोई वस्तु अपने समान गुण-धर्म वाली वस्तु में मिलकर एकाकार हो जाती है। वर्षा का जल निर्मल जल में मिलकर उसी के समान गुण-धर्म वाला हो जाता है। इसी प्रकार अज्ञानरहित आत्मा अज्ञानरहित ब्रह्म से मिलकर एकाकार हो जाता है—

यथोदकं शुं शु(मासिक्तं ताद्गोव भवति।

एवं मनुर्विजानत आत्मा भवति गौतम। कठोपनिषद् 2/1/15

जीव और ब्रह्म का ऐक्य प्रतिपादित करते हुए उपनिषत्कार कहते हैं कि जिस प्रकार जलती हुई अग्नि से समान रूपवाली अनेक चिंगारियाँ निकलती रहती हैं, उसी प्रकार ब्रह्म से नाना प्रकार के जीव उत्पन्न होते हैं, तथा उसी में विलीन हो जाते हैं—

यथा सुदीप्तात् पावकात् विस्पफुलिर्धैः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।

तथाक्षरात् विविधः सौम्यमावाः प्रजायन्ते तत्रा चैवापि यान्ति। मुण्डकोपनिषद् 2/1/1

यह सकल प्राणिजगत् सदरूपी कारण से ही उत्पन्न हुआ है, सत् में ही निवास करता है और सत् में ही लीन हो जाता है। सकल दृश्यमान जगत् ब्रह्ममय ही है। इस संसार का ब्रह्म से भिन्न न तो कोई अस्तित्व है और न कोई पृथक् सत्ता—

सन्नमूलाः सौम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्त्वं स आत्मा सम्भवति। छान्दोग्योपनिषद् 6/8/4

श्वेताश्वतर उपनिषद् भी इसी तथ्य का प्रतिपादन करती है कि दृश्यमान चराचर प्रकृति माया है तथा परमतत्त्व इसका अधिपति है। उस परमतत्त्व की शक्तिमूला प्रकृति के ही अर्धभूत कारण-कार्य समुदाय से यह सकल चराचर जगत् व्याप्यमान है—

मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।

तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्।। श्वेताश्वतरोपनिषद् 4/10

अजन्मा, अविनाशी, अमृतस्वरूप ब्रह्म ही हमारे सामने, पीछे, दक्षिण की ओर, बायीं ओर, उफपर एवं नीचे सर्वत्र अनुस्यूत है। यह सकल चराचर जगत् ब्रह्ममय ही है तथा अमृतस्वरूप यह ब्रह्म ही हम सबके द्वारा वरणीय है—

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षितश्चोत्तरेण।

अध्वचोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।। मुण्डकोपनिषद् 2/2/11

ऐतरेय उपनिषद् में भी कहा गया है कि यह सकल चराचर जगत् ब्रह्म में ही अधिष्ठित है—

यत्किंच प्राणिजंगमं चं पतत्रिा च यच्च स्थावरं सर्वं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं....प्रज्ञानं ब्रह्म। ऐतरेय0 5/3

सृष्टा, द्रष्टा, श्रोता, घ्राता, आस्वादन करने वाला, मनन करने वाला, जानने वाला तथा कर्ता, विज्ञानात्मा जीव अविनाशी परब्रह्म में ही प्रतिष्ठित है। उपाधिभेद के कारण आत्मतत्त्व नानारूपों में प्रतिभासित होता है—

एष एव एक आत्मा दृष्टा, सृष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मन्ता, बो(, कर्ता, विज्ञानात्मा पुरुषः। स पुरुषः परे अक्षरे आत्मनि सन्तिष्ठते। अद्वितीयः परमात्मा एव उपाधिभेदेन नानारूपेण अवभासते। जीवात्मरूपेण दृश्यमानोऽपि अयं परमात्मा एव। न हि जीवात्मा परमात्मा इति परमार्थत एव द्वौ आत्मानौ स्तः। आत्मा एक एव, नामरूपोपायस्तु भिन्नाः। एक एव आकाशः, घटाकाशः, करकाशः, महाकाश इवायम् एक एव कार्पासो नानाविधस्त्रारूपेण इव च एकमेव सुवर्णम् अर्जुनीयकम्, चूडामणिः, केयूरम्, कुण्डलम्, हार इव यथा त्रास्यते एवमेव एक एव आत्मा कर्ता, दृष्टा, मन्ता श्रोता इत्यादिरूपेण अवभासते। उपाधिभेदेन आत्मनः नाना नामानि दृश्यन्ते नाना रूपाणि च। परमार्थतस्तु इदं सर्वम् आत्मैव। प्रश्न0 4/9

जिस प्रकार सुप्त व्यक्ति स्वप्न में एक नवीन एवं क्षणिक संसार का निर्माण कर लेता है और स्वप्नकाल में उसे यथार्थ समझने लगता है किन्तु स्वप्न के टूटते ही उसका संसार टूट जाता है। इसी प्रकार दृश्यमान चराचर जगत् मिथ्या है तथा सब कुछ ब्रह्म ही है। उपनिषद् की सरल, सरस तथा समासयुक्त भाषा में इसे हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं— **सर्वं खल्विदं ब्रह्म।** छान्दोग्य0 3/14/1

जिस प्रकार मकड़ी जालें को उत्पन्न भी करती है तथा उसे निगल भी जाती है, इसी प्रकार सकल दृश्यमान चराचर जगत् ब्रह्म से उत्पन्न होकर ब्रह्म में ही लीन हो जाता है—

यथोर्णनाभः सृजते गृहणते च यथा पृथिव्याम् ओषध्यः सम्भवन्ति।

यथा सतः पुरुषात् केशलोमनि तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्।। मुण्डकोपनिषद् 1/1/7

जगत् के उपादान एवं निमित्तकारण ब्रह्म को विद्वज्जन अग्नि, वायु, आदित्य आदि विविध नामों से व्यवहृत करते हैं—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। श्वेताश्वर0 4/2

एकत्व की अनुभूति हो जाने पर आत्मतत्त्व किसके द्वारा किसको देखे, किसके द्वारा किसको सूंघे, किसके द्वारा किसको सुने तथा किसके द्वारा किसको जाने?—

यत्रा त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत्केन कं पश्येत्, तत्केन कं जिघ्रेत्, तत्केन कं शृणुयात्, तत्केन कं विजानीयात्। बृहदा0 2/4/12

द्वैत-भाव के अतीत हो जाने तथा एकत्व का साक्षात् कर लेने पर शोक-मोह-राग-द्वेषादि उत्पन्न ही नहीं हो सकता—

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।

तत्रा को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः। ईशा0 5

बु(ि का प्रेरयिता परमेश्वर सब रूपों की रचना करके उनके नाम रखकर उन नामों के द्वारा स्वयं ही व्यवहार करता हुआ स्थित है—

सर्वाणि रूपाणि विचित्र्य धैरो नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते। छान्दोग्य0 6/3/2

मृत्तिका ही घट है, कारण ही कार्य है। कारण-कार्यभेद, नाम-भेद अथवा आकार-भेद केवल कल्पना पर आधारित हैं। विकार ;कार्यद्ध वाणी का आरम्भमात्रा ;विलासमात्राद्ध है, वह नाममात्रा के लिए है। यथार्थ में ;घटद्ध विकार नहीं, मिट्टी ही है—

वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्। छान्दोग्य0 6/1/4

आकाश ही नाम और रूप का निर्वाह करने वाला अर्थात् उनका आधार है, वे दोनों जिसके अन्दर हैं, वह ब्रह्म है—

आकाशौ वै नामरूपयोर्निवहिता ते यदन्तरा तद् ब्रह्म। छान्दोग्योपनिषद् 8/14/1

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि उपनिषद् अद्वैतवाद की सर्वप्रमुख संवाहक है तथा यह अद्वैतवाद के पोषक एवं प्रतिपादक प्रमाणों से परिपूर्ण है। उपनिषद् प्रतिपादित आत्मैक्य अनुभूति के हो जाने पर जीव की सकल ऐषणाएँ समाप्त हो जाती हैं—

एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रौषणायाश्च वित्तौषणायाश्च लोकौषणायाश्च व्युत्थाय भिक्षाचर्यं चरन्ति। वृहदारण्यक 8/5/1

परमतत्त्व का तत्त्वज्ञान हो जाने पर सभी बन्धन कट जाते हैं। सकल क्लेशों के क्षीण हो जाने पर जीव मरण के पाश से मुक्त हो जाता है—

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः। श्वेताश्वतर 1/11

परब्रह्म की सत्यता का परिज्ञान हो जाने पर हृदय के सकल बन्धन मुक्त हो जाते हैं, समस्त सन्देह छिन्न-भिन्न तथा सर्वविध कर्म क्षीण हो जाते हैं—

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।। मुण्डकोपनिषद् 2/2/9

इस प्रकार उपनिषद् जीव को अज्ञान से अनन्त-विज्ञान की ओर, अल्पसामर्थ्य से परम-सामर्थ्य की ओर, सीमित-सत्ता से असीमित सत्ता की ओर, बन्धन से मुक्ति की ओर तथा दुःखों से परमानन्द की ओर से जाती है। जीवब्रह्मैक्य का प्रतिपादन करना, जीव और ब्रह्म के प्रातिभासिक भेद का अभेदरूप

में यथार्थ प्रतिपादन करना, जीव और ब्रह्म के भेद को औपाधिक बतलाना, ब्रह्म की अखण्डता का प्रतिपादन करना, तत्त्वमसि तथा चिदानन्दैकरूपता का अनुभव कराना तथा जगत् की प्रातिभासिक सत्ता का विनाश करना ईशावास्यादि एकादश उपनिषदों का परम प्रयोजन है।

आचार्य शंकर ने भी बृहदारण्यक उपनिषद् के भाष्य में इस तथ्य का प्रतिपादन किया है—

सैन्ध्वघनवदन्तरमबाह्यमेकरसं ब्रह्मेति विज्ञानं सर्वस्यामुपनिषदि प्रतिपादयिषितोर्थः। तथा सर्वशात्रोपनिषत्सु च विज्ञानं निश्चितोर्थः। बृहदारण्यक 1/4/10

अर्थात् नमक के ढेले की भाँति ब्रह्म अन्तररहित, बाहर और भीतर से भेदरहित तथा सर्वदा एकरस है। इसी विज्ञान का प्रतिपादन करना सभी उपनिषदों का परम ध्येय है।

माण्डूक्योपनिषद् के भाष्य में आचार्य शंकर भी इस मत को अभिव्यक्त करते हैं कि सकल उपनिषदों का तात्पर्य अद्वैतवाद, जीवब्रह्मैक्यद्द का प्रतिपादन ही है—

इष्यते च सर्वोपनिषदां सर्वालैक्यप्रतिपादनम्। माण्डूक्य 1/3

अन्त में निष्कर्षरूप में यही कहा जा सकता है—

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत्।

देहबुद्ध्या तु दासो हं जीवबुद्ध्या त्वदर्शकः।

आत्मबुद्ध्या त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः।।

धर्मविजयनाटके ध्वनिसौन्दर्यम्

नम्रताउपाध्यायः¹⁶

शोधसारः

भूदेवशुक्लप्रणीतं धर्मविजयनाटकं समदशशताब्देः वर्तते। नाटकेऽस्मिन् धर्मशास्त्राश्रितकथा पञ्चाङ्कपरिमिता वर्तते। एतस्य नाटकस्य पञ्चसु अङ्केषु यवनकालीनभारतवर्षस्य समाजव्यवस्थायाः चित्रणं परिविम्बितम् अस्ति। कथावस्तुमाध्यमेन नाटकमिदं प्रतीकनाट्यपरम्परायां स्वकीयामुपस्थितिः प्रतिष्ठाश्च उपस्थापयति। नाट्येऽस्मिन् काव्यशास्त्रीयानि तत्त्वानि गर्भितानि जातानि। तेषु ध्वनिसौन्दर्यमवलम्ब्य किञ्चिद्विचारो मयाऽत्र प्रस्तूयते। ध्वनिसौन्दर्यम्- साहित्यशास्त्रीयपरम्परायां पटसम्प्रदायाः प्रवर्तिताः सन्ति। तेषु सम्प्रदायेषु ध्वनिसम्प्रदायः आनन्दवर्धनेन प्रवर्तितः वर्तते। ध्वनितत्त्वमङ्गीकृत्य आचार्यः आनन्दवर्धनः ध्वन्यालोकनाम्ना ग्रन्थं रचितवान्। ग्रन्थेऽस्मिन् चत्वारः उद्योताः सन्ति। तेषु उद्योतेषु ध्वनितत्त्वस्य विस्तृतं विवेचनं प्रतिपादितम्। तत्र ध्वनिकारेण ध्वनिलक्षणमुपस्थाप्य रस-अलंकार-वस्तुध्वनिरूपाणां सोदाहरणपूर्वकं पर्यालोचनं कृतम्। ध्वन्यालोके ध्वनेः पञ्चव्युत्पत्तयः प्राप्यन्ते। ध्वनिशब्दस्य तात्पर्योऽयं वर्तते यत् ध्वन्यात्मकविचारः चमत्कारोत्पादकविचारश्चेति। यत्र व्यञ्जनाशक्त्या चमत्कारजन्यता उत्पद्यते, तेन चमत्कारेण अर्थेन सहृदयस्यान्तःकरणे अलौकिकानन्दानुभूतिः जायते तदैव ध्वनि नाम्ना अङ्गीक्रियते। काव्यप्रकाशकारेण आचार्यमम्मटेन काव्यप्रकाशे काव्यस्य त्रिप्रकारेषु ध्वनिकाव्यमुत्तमकाव्यमिति विहितम्। उक्तञ्च —

'इदमुत्तमतिशयिनीव्यङ्ग्ये वाच्यादध्वनिर्बुधैः कथितः। का.प्र.१/४

अर्थात् यत्र वाच्यार्थाद् व्यङ्ग्यार्थः अत्यधिकचमत्कारयुक्तः भवति तत्र ध्वनिकाव्यमित्युच्यते। ध्वनिरेव काव्यस्य मुख्यं प्राणभूततत्त्वमिति। अत्र ध्वनि इत्यनेन पदेन चमत्कारजन्योऽर्थः गृह्यते। यथा देवालये घण्टानादो भवति, घण्टानादानन्तरं किञ्चिद् ध्वनिः गुञ्जायमाना जायते तथैव शब्दोच्चारणानन्तरं काव्यार्थस्य कश्चिद् विशिष्टः चमत्कारजन्यः अर्थः सहृदयस्य बुद्धौ गुञ्जायमानो भवति। गुञ्जायमानेन

अर्थेन सहृदयसंबन्धम् उल्लासमनुभवति। तदेव व्यङ्ग्यार्थरूपः ध्वनिः इति पर्यायपदेन आनन्दवर्धनेन स्वकीयविचारविषयो गृहीतः। विषयमेतं स्वीकृत्य ध्वनितत्त्वस्य विस्तृता पर्यालोचना प्रतिपादिता। ध्वनिकारेण ध्वनिलक्षणं निगदितं यत्-

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थो।

व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सुरिभिः कथितः॥ ध्व.लो.१/१३

यत्रार्थो वाच्यविशेषः वाचकविशेषः शब्दो वा तमर्थं व्यङ्क्तः स काव्यविशेषो ध्वनिरिति। एतस्य ध्वनिलक्षणस्य प्रभावेण काव्यनाटकादिषु ध्वन्यमानचमत्कारः सहृदयस्यान्तःकरणे विशिष्टस्वारस्यं परिप्रकाशयति। धर्मविजयनाटके भूदेवशुक्लेन दृश्यकाव्यकथायां रस-अलंकार-वस्तुरूपचमत्कारितायाः प्रभा प्रदर्शिता। तस्याः चमत्कारितायाः प्रभावेण सहृदयसंबन्धपाठकाः अध्येतारश्च कविवरभूदेवशुक्लस्य

¹⁶ शोधकर्त्री, एकलव्यपरिसरः, अगरतला

काव्यसौरभस्य आस्वादनं कुर्वन्ति। धर्मविजयनाटके यद्यपि धर्माश्रिता कथावस्तु गर्भिता जाता तथापि यत्र-
तत्र ध्वन्यात्मकतायाः सम्भावना सम्भाव्यते। यथा-द्वितीयेऽङ्के व्यभिचारः प्रविश्य कथयति-

काचित्कान्तं परमभिसरस्यात्मना वित्तकामा
दृती काञ्चिन्नयति विविधैश्छद्मभिः सम्प्रलोभ्य ।
काचित्कर्तुं व्रजति सफलं जारसंगाद्वयः स्वं
काचिद्वन्ध्या प्रतिमठमटल्याकुला पुत्रहेतोः॥ ध. वि. २/१

काचित् युवती कंचित् सुन्दरं युवकं वित्तकामनया अभिसारकर्तुमिच्छया विविधश्छद्मप्रलोभनैः कुत्रचित्
नयति । कुत्रचित् स्वाभीष्टपूर्तये योषिता समयस्येन सह याति, कुत्रचित् कापि वन्ध्यस्त्री पुत्रकामनया
मठमठान्तरेषु अटति। अत्र तात्पर्योऽयं वर्तते यत् तत्कालीनसमाजे अधर्मस्य प्रभावेण धर्माश्रिताः जनाः
कदाचरणप्रसक्ताः आसीदिति। परमभिसरस्यात्मना, विविधैश्छद्मभिः सम्प्रलोभ्य, जारसंगाद्वयः सफलं कर्तुं
व्रजति, प्रतिमठे पुत्रहेतुकामनया आकुला जायते। भावार्थेऽस्मिन् योषिता स्वरतिकामनायाः कृते अधर्मेण
प्रभाविता जाता। सा केनचिदपि कुत्रचिदपि वासनापूर्तये सम्भोगार्थमिच्छति परपुरुषैः सह याति इत्यर्थः।
अत्र रसाभासध्वनिः ध्वन्यते। रसस्य आभासः यत्र भवति तत्र रसाभास सम्भाव्यते। अपि च-

एकत्रैके निवासादविदितचरिताः संश्रयन्त्यन्यकान्ता
भूत्वा मित्राणि भर्तुर्विलसितमपरे तस्य दारैर्भजन्ति।
केचिद्वाणिज्यदंभात्परिचरणमिपात्केऽपि धर्मोपदेश-

व्याजात्केचित्परेषां शरणमुपगताः कामिनीः कामयन्ते॥ तत्रैव २/२

अत्र काचित् कामिनी धर्मोपदेशव्याजात् केषाञ्चन जनानां सांसारिकसुखेच्छया उपभोगाय काम्यते ।
भर्तुर्विलसितमपरे दारैर्भजन्ति इत्यादिभिः व्यञ्जकैः पदैः सम्भोगशृङ्गारः सहृदयस्य अन्तःकरणे चमत्कारः
ध्वन्यात्मकतामावहति इत्यर्थः। अतः रसध्वनिः व्यञ्जितः भवति। अपि च-

वाटीविभूषणमनर्घ्यमुदारशाटी

पाटीरकुंकुमविलेपनमन्यदाराः।

तीव्रा सुरा कुसुमपल्लविनी च शय्या

स्वर्गोऽयमेव नरकः क्व नु केन दृष्टः॥ तदैव -२/३

अत्र सुरा कुसुमपल्लविनीशय्या इत्यादिभिः व्यञ्जकैः शब्दोपन्यासैः शृंगाररसध्वनेः परिप्रकाशनं जायते
इत्याशयः। अर्थात् लोके एतादृशानि आनन्ददायकानि पदार्थानि प्राप्यन्ते तर्हि कः स्वर्गसुखमिच्छति अपितु
सर्वे एतत् सुखमेव अभिवाञ्छन्तीति। अपि च-

वृत्त्यत्कूर्पासहारं विगलितवलयं विक्षथं नीविवाढं

प्रौढप्रेमातिरिच्यग्विचलितनयनं गाढमालिङ्गितायाः।

उच्छवासोत्तालवक्षोभुवदृढघटनादेति नव्यां महीया

नङ्गप्रत्यङ्गसङ्गादनुभवपदवीं कोऽपि शर्मातिरेकः॥ तदैव-२/४

अत्र विक्षथं नीविवाढं, उच्छवासोत्तालवक्षोभुवदृढघटनादेति नव्यां महीयान्
अङ्गप्रत्यङ्गसङ्गादनुभवपदवीम् इत्यादिभिः व्यञ्जकैः शब्दैः रतिव्यापारस्य सुखातिशयता अभिव्यज्यते।
अतःशृंगाररसध्वनिः ध्वन्यते ।

उपर्युक्तेषु पद्येषु कविभूदेवशुक्लस्य यः ध्वन्यात्मकविचारः गर्भितः जातः स एव मया
परिप्रकाशितमिति । अतः धर्मविजयनाटके रसाभासध्वनिः रसध्वनिश्च परिस्फुट्यते । अलङ्कारध्वनेरपि
नाट्येऽस्मिन् साक्षात्कारः जायते । अलङ्कारध्वनिः यत्र कश्चिद्विशिष्टः पदार्थः कस्यचित् विशिष्टालङ्कारस्य
परिप्रकाशनं करोति, तेन परिप्रकाशितेन आलङ्कारिकेन अर्थेन अलङ्कारस्य प्राधान्यं भजते । प्राधान्येन
अलङ्कारजन्येन अर्थेन सहृदयस्य अन्तःकरणे चमत्कारः उत्पद्यते तत्र अलङ्कारध्वनिविषयः मन्यते । तद्यथा-

सहसैव कम्पमुपयान्ति भूधराश्रलन्तीन्दुमण्डलमथो मुहुर्मुहुः।

तरली भवन्ति गगनेऽपि तारकाः तपसा जितं जितमहो मनोभुवः॥ तदैव- २/१५

अत्र नायिकायाः भूधराः पर्वतसदृशाः उन्नताः स्तनौ कम्पयन्तौ स्तः, मनोभुवः कामदेवस्य पर्यायपदमिति
कविपरिकल्पना वर्तते । अतएव उपमाऽलङ्कारध्वनिः चमत्कारितामावहति । एतस्मात्कारणात्
उपमाध्वनिः सम्भाव्यते।

प्रकृतनाटकस्य द्वितीयेऽङ्के वस्तुध्वनिः परिलक्ष्यते। तद्यथा-

पीतमस्तदयमन्यकान्तया वीक्ष्य मुग्धमधुरं नतभ्रुवा।

चुम्बितं त्वरितयापि केवलं कान्तकान्तवदनं विलोक्यते ॥ तदैव- २/६

अपि च-

स्वेदः कपोले क्षयता दुकूले किमेतदित्यालिगिरं निपीय ।

दरानमत्कन्धरबन्धुराङ्गी तूष्णी कुरङ्गीनयनेयमास्ते ॥ तदैव-२/७

उपर्युक्तयोः श्लोकयोः माधुर्यभावनया वस्तुध्वनेः साक्षात्कारः जायते । अत्र पीतं मुग्धमधुरं चुम्बितं त्वरितया
इत्यादिभिः पादन्यासैः वचनविन्यासैश्च सहृदयस्य अन्तःकरणे चमत्कारः उद्भाव्यते । तद् वस्तुरूपो चमत्कार
एव वस्तुध्वनिरूपतां प्राप्नोति अतः वस्तुध्वनिः सम्भाव्यते। अपरेऽस्मिन् स्वेदः कपोले क्षयता दुकूले ,
तूष्णीकुरङ्गीनयनेयमास्ते इत्यादिभिर्वाक्यैः वस्तुरूपता प्रकाश्यते । अतः भावार्थः चमत्कारितामावप्य
वस्तुध्वनिं व्यञ्जयते ।

उपसंहारः- निष्कर्षरूपेण वयं वक्तुं शक्नुमः यत् भूदेवशुक्लः धर्मविजयनाटकस्य कथायां इतस्ततः
काव्यशास्त्रीयानि तत्त्वानि निरूप्य स्वकीयां काव्यप्रतिभां पाण्डित्यञ्चेति साहित्यशास्त्रीयपरम्परायां
परिप्रकाशितवान् इति मे विचारो दृढः।

सन्दर्भः-

१. का.प्र. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
२. ध्वन्यालोकः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
३. धर्मविजयनाटकम् , 2013 मान्यताप्रकाशन, नई दिल्ली
४. संस्कृतसाहित्येतिहासः, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी

शिक्षण प्रक्रिया में योग

प्रदीप कुमार झा¹⁷

शोधसार

किसी भी भाषा के शिक्षण के लिए नवाचारी अभ्यास का होना अत्यन्त ही आवश्यक है। नवाचारी विधियों, प्रयोगों या उपागमों का जितना अधिक से अधिक प्रयोग होगा, अधिगम का स्तर उतना ही सरल, अधिक और स्थायी होगा। नवाचारी विधियों अधिगम के लिए जिज्ञासा और रुचि उत्पन्न करने में अत्यधिक कारगर होते हैं। तकनीकी और मनोविज्ञान के सन्दर्भ में तो नवाचारी अभ्यास प्रायशः देखे ही जाते हैं परन्तु योगशिक्षा के सन्दर्भ में इसे बहुत कम ही देखा जाता है। जबकि ये नवाचारी अभ्यास प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से यत्र-तत्र-सर्वत्रा देखे और अनुभव तथा जाने-अनजाने में प्रयोग किए जाते हैं। वस्तुतः योग शिक्षा की प्रकृति दर्शन-परक है और दर्शन ने हमेशा ही शिक्षा को उद्देश्य, विधि, प ति, तकनीक आदि विभिन्न प्रकार के तत्त्वों से आलोकित किया है, इसलिए निश्चित है कि योग ने भी भाषा-शिक्षण को वैज्ञानिक रूप से सम्युक्त किया है।

‘योगश्चित्तवृत्ति निरोधः’ अर्थात् चित्त की नकारात्मक वृत्तियों को रोकना ही योग है। चित्त इन्द्रियों के माध्यम से ज्ञान का अर्जन और क्रियाओं का सम्पादन करता है, इसलिए चित्त का निर्मल और निर्विकारी होना आवश्यक है। जब चित्त विभिन्न प्रकार के भ्रमात्मक ज्ञान से स्वयं को हटाकर **‘यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धरणा-ध्यान-समाधि’** के द्वारा स्वरूपशून्य अर्थात् निर्धारित परमलक्ष्य में अपने को सम्पूर्ण समाहित कर लेता है तो वही योग की पूर्णता कहलाती है। इस प्रक्रिया को शिक्षाशास्त्र में अधिगम-अनुभव की पूर्ण अवस्था बताया गया है तथा इसकी प्रक्रिया पर अत्यधिक बल दिया गया है। इसमें बताया गया है कि समाधि की अवस्था में अधिगम-कर्ता अधिगम-अवस्था के सबसे निकटस्थ स्तर पर होता है। अष्टांगयोग की प्रथम अवस्था **‘यम’** शिक्षार्थी के चारित्रिक शुचिता को व्यक्त करता है तथा उसकी विधियों को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच व्यवहारों के द्वारा बताया गया है। **‘नियम’** में शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर या गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा का भाव होना ही अवस्था है। **‘आसन’** का निहितार्थ है कि शिक्षक और शिक्षार्थी सुखपूर्वक स्थिरता के साथ विषयवस्तु के साथ अपने आपको जोड़ें। **‘प्राणायाम’** में जहाँ श्वास-प्रश्वास के द्वारा आन्तरिक-क्रिया को बाह्य-क्रिया के साथ संतुलित किया जाता है वहीं इसका सम्बन्ध अध्ययन और अध्यापन से भी साक्षात् जुड़ा हुआ है। अध्ययन के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना तथा उसके बाद उस पर श्रवण-मनन-निदिध्यासन की प्रक्रिया के द्वारा तत्त्व पर विचार करना, पिफर अध्यापन के द्वारा व्यक्त करना ही प्राणायाम का शैक्षिक स्वरूप है। प्रत्याहार में इन्द्रियों को भटकावपूर्ण मार्गों से हटाकर किसी एक निश्चित स्वरूप की ओर प्रेरित किया जाता है और जब इन्द्रियों का नियंत्रण हो जाता है तो चित्त किसी एक निर्धारित उद्देश्य की ओर प्रवृत्त हो जाता है और यही **‘धरणा’** कहलाती है। चित्त की प्रवृत्ति के बाद जब लगातार उसी उद्देश्य पर विचार या चिन्तन किया जाता है तो यही **‘ध्यान’** का स्वरूप होता है। ध्यान के बाद जब शिक्षार्थी उस विषयवस्तु को अपने में आत्मसात् कर लेता है तो यही **‘समाधि’** कहलाती है। जिस प्रकार नदी अपने-आपको समुद्र में समाविष्ट कर एकत्व बोध की स्थिति में आ जाती है, वही समाधि का वास्तविक स्वरूप होता है। इस प्रकार यौगिक-प्रक्रिया के अनुसार ही शैक्षिक-प्रक्रियाओं का भी क्रियान्वयन होता है।

वस्तुतः अन्य दर्शन जहाँ मानसिक और आध्यात्मिक पक्ष को रखते हुए अमूर्त तर्कों के द्वारा अमूर्त विषयों का चिन्तन करते हैं वहीं योग दर्शन शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक इन तीनों पक्षों के द्वारा प्रत्यक्ष साधन से अमूर्त विषयों का वैज्ञानिक चिन्तन करता है। इसी कारण से योग दर्शन और योग शिक्षा समाज के सभी वर्गों एवं क्षेत्रों में व्याप्त है तथा सभी के लिए उपयोगी एवं प्रभावी है।

आइये आज हम विभिन्न प्रमाणों के द्वारा यह अन्वेषण करने की कोशिश करते हैं कि भाषा-शिक्षण हेतु कौन-कौन से नवाचारी अभ्यास हैं जिसे योग-शिक्षा के सन्दर्भ में अर्थात्

पूष्ठभूमि में पल्लवित और पुष्पित किए जाते हैं। योग-शिक्षा के द्वारा इन नवाचारी अभ्यासों से भाषा शिक्षण को किस प्रकार लाभ प्राप्त होते हैं।

; पद्ध कण्ठस्थीकरण

भाषा शिक्षण या किसी अन्य विषय के शिक्षण-अधिगम के लिए कण्ठस्थीकरण एक प्रमुख प्रायोगिक-क्रिया के समान है जिसमें अधिगमकर्ता अपने इन्द्रियों को नियन्त्रित करने तथा एकाग्रचित्त होकर वाक्यों, गद्यांशों, पद्यांशों या किसी भी विषय के तत्त्वों को बार-बार स्मरण करते हुए कण्ठस्थ करता है। इस कण्ठस्थीकरण की प्रक्रिया में अधिगम कर्ता योग के विभिन्न अंगों का परोक्षपरोक्ष रूप से प्रयोग करते हुए अभ्यास करता है तथा कण्ठस्थीकरण से अधिगम शक्ति को सफेक, स्थायी और प्रत्युत्पन्नमत्तित्व बनाता है। इस कण्ठस्थीकरण-प्रक्रिया में अष्टांगयोग ; **यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धरणा-ध्यान-समाधि** अत्यन्त सहायक होते हैं। अष्टांगयोग में जो दूसरा योग नियम है उसके अन्तर्गत आनेवाला स्वाध्याय ; योगद्ध कण्ठस्थीकरण-प्रक्रिया की प्रवृत्ति में सहायक सि होता है। प्राणायाम की शक्ति को जागृत करके भी कण्ठस्थीकरण के स्तर में अधिकाधिक वृत्ति की जा सकती है। प्राणायाम कण्ठस्थीकरण के साथ-साथ भावार्थ स्पष्टीकरण में भी सहायक होते हैं। इस प्रकार कण्ठस्थीकरण की प्रक्रिया में योग शिक्षा अत्यन्त सहायक सि होती है।

; पपद्ध उच्चारण शिक्षण

श्रवण-पठन-वाचन एवं लेखन इन चार बुनियादी तत्त्वों का शिक्षण में बड़ा ही महत्त्व है। श्रवण के बाद पठन एवं वाचन इन दो तत्त्वों की स्वयं-सि ता निर्विवादित है। उच्चारण में जहाँ ध्वनियों को सन्तुलित वायु के साथ निश्चित स्थान के साथ प्रयोग किया जाता है। इच्छित शब्द या वर्ण के उच्चारण के लिए प्राणायाम की अत्यन्त उपयोगिता देखी जाती है। प्राणायाम के द्वारा जहाँ वायु को श्वास-प्रश्वास के द्वारा सन्तुलित प्रयोग किया जाता है। प्राणायाम को सूत्रात्मक रूप में परिभाषित करते हुए महर्षि पत जलि ने कहा है - **‘तस्मिन्सति श्वास-प्रश्वासयोर्विच्छेदः प्राणायामः’**। अर्थात् आसनस्थ होने के बाद जब शरीर को किसी आसन में स्थिर करने में प्रयत्न की अपेक्षा न हो तथा बहुत काल तक स्थिर बैठने का अभ्यास हो जाए तो उसके बाद पूर्वोक्त ध्यान सम्बन्धी आसनों में से किसी एक आसन में बैठकर श्वास अर्थात् बाहर से वायु अन्दर ग्रहण करके शरीर के अन्दर वक्षस्थल में स्थित वायु, जो शरीर की प्राण सम्बन्धी क्रियाओं का आधार है, को बाहर निकालकर उन्हें दोनों स्थिति में रोकने का अभ्यास करते हुए इस स्थितियों में पहुँचना कि श्वास और प्रश्वास दोनों ही क्रियाओं का अभाव हो जाए, प्राणायाम कहलाता है। इस प्राणायाम के द्वारा शब्दों या वर्णों के उच्चारण में कुशलता तथा स्पष्टता आती है। मस्तिष्क में एक कम्पन सी होती है जिससे शब्दोच्चारण विकाररहित तथा प्रभावी होता है।

; पपपद्ध वाचन

संस्कृतभाषा शिक्षण के अन्तर्गत या किसी अन्य भाषा शिक्षण अधिगम के लिए वाचन विशिष्ट कारक है। चूँकि वाचन में लय, गति, यति, छन्द, अलघङ्कार, विरामादि विधियों के अनुरूप ही प्रक्रियाओं का अनुकरण करना होता है इसलिए यहाँ योग के विभिन्न अघटकों की उपयोगिता देखी जा सकती है। पद्य-शिक्षण में जहाँ सस्वर-वाचन की जरूरत होती है तथा बड़े-बड़े छन्द से सम्बन्धित पद्यों का गायन किया जाता है। इन गायनों में श्वास को रोककर या दीर्घ श्वास लेकर ही इसे पूरा किया जाता है जो योग के प्राणायाम के द्वारा ही सम्भव है। प्राणायाम के द्वारा ही शास्त्रीय-सघट्टीत के सात-सुरों को इतना लम्बा और सुरीला बना पाना सम्भव हो पाता है। इसी प्रकार गद्य-वाचन या आदर्श-वाचन में भी विभिन्न आसनों का प्रयोग अपेक्षित हो जाता है तथा ध्यान का महत्त्व कापफी सकारात्मक हो जाता है। ध्यान के बारे में योगसूत्रकार ने बताया है - **‘तत्रा प्रत्येकानता ध्यानम्’**। अर्थात् वाचन के क्रम में विरामादि विधियों को अवधानपूर्वक उच्चारण करके उसके भावार्थ के प्रति ध्यानकेन्द्रित करना। स्वर्णों का उतार-चढ़ाव इत्यादि सभी योग से प्रेरित होते हैं। इन्हीं शिक्षण के सोपानों में मौन-वाचन का सोपान भी आता है जहाँ शिक्षार्थी मौनपूर्वक अपने इन्द्रियों को नियन्त्रित करके विषय पर ध्यान केन्द्रित करता है और अर्थात्बोध के लिए बारम्बार मानसिक प्रयत्न करता रहता है। मौनवाचन में स्वाध्याय ; नियमद्ध प्रत्याहार तथा समाधि की भागीदारी देखी जा सकती है। जिस प्रकार प्रत्याहार में इन्द्रियों को बाह्य जगत से हटाकर मुख्य विषय पर ध्यानकेन्द्रित किया जाता है उसी प्रकार मौनवाचन में भी शोर-शराबे तथा दृश्य जगत से हटकर मुख्य वाचन की सामग्री

¹⁷ श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रीयसंस्कृतविद्यापीठ,नवदेहली

पर ध्यान केन्द्रित करना होता है तथा समाधिवत् उस विषय-ज्ञान को आत्मसात् करना पड़ता है।

; पञ्च क्रीडा विधि

संस्कृत शिक्षण को अधिक से अधिक प्रभावी और रुचिकर बनाने के लिए क्रीडा विधि का प्रयोग किया जाता है। पद्यात्मक क्रीडा में अन्त्याक्षरी, पद्यगायन और पहेलियों का प्रयोग किया जाता है जिससे मस्तिष्क की चिन्तन-शक्ति जागृत होकर व्यावहारिक होती है। गद्यात्मक-क्रीडा के लिए शब्द-निर्माण, वर्ण-संयोजन इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। क्रीडा-विधि में योग का रचनात्मक योगदान देखा जाता है। अन्त्याक्षरी में जहाँ 'ध्यान' और 'स्वाध्याय' के द्वारा एकाग्रचित्त होकर क्रीडा द्वारा अध्याय होता है। इन सभी विधियों में अपटाघट्ट योग किसी न किसी प्रकार से सहायक सिद्ध है। अतः क्रीडा विधि नवाचारी अभ्यास के लिए योग शिक्षा हर प्रकार से उपयुक्त एवं उपकारी है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत पत्र में भाषा-शिक्षण हेतु नवाचारी अभ्यास को योग शिक्षा के सन्दर्भ में उपस्थापित किया गया है। यथेष्ट अधिगम स्तर को प्राप्त करने के लिए शिक्षण के नवाचारी-अभ्यास का अत्यन्त महत्त्व है। परन्तु योग-शिक्षा के सन्दर्भ में इसका नूतन प्रयोग दिखाई दे रहा है। यद्यपि इसका प्रयोग तो प्राचीन समय से ही दिखाई देता रहा है। योग के इन नवाचारी अभ्यासों से शिक्षण में कई लाभ हुए हैं। कण्ठस्थीकरण में इन्द्रिय-नियन्त्रण के द्वारा उचित उद्देश्य की प्राप्ति होती है। इसमें प्राणायाम, ध्यान, धरणा और प्रत्याहार के द्वारा मन-मस्तिष्क का व्यवस्थापन करके विषयवस्तु को आत्मसात् किया जाता है। जब विषयवस्तु आत्मसात् होता है तो कण्ठस्थीकरण की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। उच्चारण शिक्षण में योग शिक्षा के सन्दर्भ में नवाचारी अभ्यास कापफी उपयोगी है। उच्चारण शिक्षण में वर्णों, शब्दों, वाक्यों के उच्चारण में प्राणायाम कापफी उपयोगी है। श्वास एवं प्रश्वास के द्वारा उच्चारण शक्ति का विकास होता है एवं प्राणायाम के द्वारा मस्तिष्क झंकृत होते हैं और उच्चारण स्थानों में तीव्रता उत्पन्न कर देती है जिससे उच्चारण स्पष्ट और शुद्ध हो जाते हैं। वाचन में गति, यति, लय इत्यादि को समन्वित करने में योग की बड़ी भूमिका है। वाचन में आदर्श वाचन, अनुवाचन, सस्वर वाचन एवं मौन वाचन इत्यादि आते हैं और इन सभी के लिए प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धरणा इत्यादि अत्यन्त सहायक होते हैं। क्रीडा विधि में भी योग की सहभागिता प्रभावपूर्ण है। शब्दनिर्माण, वर्णसंयोजन, पद्यगायन, अन्त्याक्षरी इत्यादि में प्राणायाम, ध्यान, धरणा एवं समाधि प्रभावपूर्ण भागीदारी निभाते हैं। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भाषा शिक्षण हेतु नवाचारी अभ्यास का योग शिक्षा के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण भूमिका एवं उपयोगिता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- परमहंस, स्वामी अनन्त भारती, योग दर्शन, स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली
- पुरुषार्थी, योगेन्द्र; १९९५, वेदों में योग विद्या, महर्षि वेद विद्या प्रतिष्ठान, उन्जैन
- आत्रेय, शान्ति प्रकाश, योग मनोविज्ञान
- शास्त्री, विजयपाल; २००७, पात जल योग विमर्श, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
- सिलोड़ी, महेशप्रसाद; २००८, योगामृतम्, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली
- सिलोड़ी, महेशप्रसाद; २०१३, योगामृतम् एवं सिद्धांत, अभिषेक प्रकाशन, नई दिल्ली
- शर्मा, हरीश कुमारी, योग दीपिका, कमला पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
- कल्याण योग तत्त्वाध्याय, गीता प्रेस, गोरखपुर

बिहार के महान् वैज्ञानिक आर्यभट्ट

रतीशकुमार झा¹⁸

शोधसार

भारतीय ज्योतिष शास्त्र के इतिहास में साक्षात् सूर्यावतार महान् गणितज्ञ तथा प्रसिद्ध (भूगोलवेत्ता आर्यभट्ट का जन्म आज से 1500 वर्ष पूर्व पटना में हुआ।¹⁹ तथा सर्वप्रथम उन्होंने पृथ्वीचलन या भ्रमण सिद्धांत की आधारशिला प्रदान की²⁰ जिस समय उन्होंने 'आर्यभट्टीयम्' ग्रन्थ की रचना की उस समय उनकी उम्र मात्रा तेईस, 23-वर्ष की थी जैसा कि उन्होंने अपने ग्रन्थ आर्यभट्टीय में कही है। यथा—

षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रायश्च युगपादाः।

त्रयधिका विशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोतीताः।²¹

इस श्लोक से ऐसा ज्ञात होता है कि तीन युगपाद सत्ययुग त्रोता, द्वापर के बीत जाने पर अर्थात् कलियुग के आरम्भ से साठवर्षवाले गुरु वर्ष का जब साठ वार भ्रमण हो चुका था, अर्थात् 60*60= 3600 सौर वर्ष बीत चुके थे। तब ग्रन्थ के लिखने के समय में उनकी आयु 23 वर्ष बीत चुकी थी। अर्थात् 3600-23 = 3577 वर्ष बीतने पर आर्यभट्ट का जन्म हुआ था। 3179 वर्ष कलियुग के बीतने पर शक का आरंभ हुआ था। इसलिए 3577-3179 = 398 शक में महान् वैज्ञानिक आर्यभट्ट का जन्म हुआ था। तथा 398+23 = 421 शकाब्द में उन्होंने 'आर्यभट्टीयम्' ग्रन्थ की रचना की थी।

अतः आर्यभट्ट के जन्म के समय निर्धारण के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि कलियुग के प्रारंभ से उन्होंने अपने जन्म समय की गणना की है, जिससे ज्ञात होता है कि आर्यभट्ट के समय में शक संवत् का आरंभ नहीं हुआ था। उन्होंने आयु की पुरी गणना वर्षगणना में दी है, जो वर्षान्त या वर्षारम्भ हो सकता है। सिद्धांतग्रन्थों के अन्य ज्योतिर्विदों के मत से भी वर्ष की गणना 13 या 14 अप्रैल से प्रारम्भ होती है। अतः निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि आर्यभट्ट का जन्म 13 या 14 अप्रैल ही होगा।

जन्मस्थान

¹⁸ श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली- 16

¹⁹ ब्रह्मकुशशिबुभ्रुगुरविकुजगुरुकोणभगणान्मस्कृत्य।

आर्यभट्टिचह निगदति कुसुमपुरेऽभियर्चितं ज्ञानम्।।, आर्यभट्टीयं गणितपादश्लोक- सं.- 1ख

²⁰ कु, भूमेद्ध भगणाः शिबुणलुखुषु।, आर्यभट्टीयं दशगीतिका श्लो. सं.- 3ख

²¹ आर्यभट्टीयं कालपाद श्लो. सं. 10

आर्यभट्ट पटना के थे। उन्होंने पटना का नाम कुसुमपुर लिखा है। उन्होंने लिखा है “इस कुसुमपुर में अभ्यर्चित, विशेष रूप से पूजित ज्ञान को आर्यभट्ट कहते हैं।”²² पटना का पुराना नाम पुष्पपुर था। कालिदास ने रघुवंश में इस नगर को पुष्पपुर कहा है।²³ रघुवंश के टीकाकार मल्लिनाथ ने इस नगर को अपने समय में पाटलिपुर कहा है। दशकुमारचरित के लेखक दण्डी ने इस नगरी को पुष्पपुरी कहा है।²⁴ पुष्पपुर का ही दूसरा नाम कुसुमपुर है। क्योंकि पुष्प का पर्याय कुसुम है। पटना का नाम पाटलिपुरा भी था। जिसके सम्बन्ध में बहुत सी बातें कही जाती हैं। षट्दर्शन टीकाकार वाचस्पतिमिश्र ने इस नगर को पाटलिपुरा कहा है।²⁵ महाभाष्य में ‘अनुशोणं पाटलिपुरात्राम्’ कहा गया है। म.म.पं. सुधकर द्विवेदी गुरुवर ने अपनी लल्लसि(न्त की भूमिका में कहा है कि प्राचीन काल में चीन देश के चरों से चर्चित पुष्पपुरी नगरी में आर्यभट्ट ने वेद करके जिस भगणों को लिखा उसी को लल्ल ने भी अपने ग्रन्थ में पठित किया।²⁶

उन्होंने अपनी गणकतरिणी में लिखा है²⁷ कि आर्यभट्ट ने कुसुमपुर संप्रति पटना नाम से प्रसिद्ध नगर में आर्यभटीय को लिखा। यह उनके मर्दल श्लोक से ही ज्ञात होता है। एक और उद्भट²⁸ श्लोक से यह विदित होता है कि आर्यभट्ट कुसुमपुर में हुए थे।

वायु पुराण में लिखा है कि गर्घी के दक्षिण तट पर बड़ा नगर कुसुमपुर था।²⁹ वह पटना ही है।

²² आर्यभट्टस्त्वद् निगदति कुसुमपुरे (स्यर्चितं ज्ञानम् । आर्यभटीय, गणित पाद 12

²³ अनेन चेदिच्छसि गृह्यमाणं पाणि वरेण्येन कुरुप्रवेशे ।

प्रासादवाताय संस्थितानां नेत्रोत्सवं पुष्पपुरा नानाम् ।।, रघु. 6.24द

²⁴ अस्ति समस्तनगरीनिकषायमाणा शश्वदगव्यपण्यविस्तारितमाणिगणादिवस्तुजात व्याख्यातरत्नाकरमाहात्म्या

मगध्वेशवैखरीभूता पुष्पपुरी नाम नगरी ।, दशकुमार चरित, ग्रन्थारम्भेद

²⁵ पाटलिपुरे पूर्वदृष्टस्य प्रासादस्य माहिभत्यामवभासः ।

वाचस्पतिमिश्र, भामतीटीका, ब्रह्मसूत्र शा ड्वरभाष्य ।।

²⁶ प्राचीनचीनचरचर्चितपुष्पपुर्यामापूर्य पर्ययजमार्यभटेन वेध्म् ।

व (तदेव वरलल्लसुधिसुधैघघराप्रवाहनिकरेण महत्तमाप ।।, सुधकर द्विवेदी, लल्लसि(न्त भूमिकाद

²⁷ आर्यभटेन कुसुमपुरे संप्रति पटनानाम्ना प्रसिं (नगरे स्वतन्त्रग्रन्थं व्यरची तत्कृतप लेन गणितपादारंभकेण ज्ञायते ।

गणकतरिणी, पृ. 5, पंक्ति ।

²⁸ सि(न्तपञ्चकविधवपि दृग्विरु(मौदयौपरागमुखखेचरचारक्लुप्तौ ।

सूर्यः स्वयं कुसुमपुर्यभवत् कलौ तु भूगोलवित् कुलप आर्यभटाभिधनः ।।

²⁹ उदायी भविता यस्यास्त्रयस्त्रिंशत्समा नृपः ।

स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम् ।

ग या दक्षिणे कूले चतुर्थे(ब्दे करिष्यति । वायुपुराण 388.28–30

केवल शङ्करबालकृष्णदीक्षित अपने ‘भारतीय ज्योतिष शास्त्रा’ में लिखते हैं कि कुसुमपुर नामक नगर कोई दक्षिण देश में रहा होगा, क्योंकि आर्यभटीय पुस्तक की पाण्डुलिपि मालावार प्रान्त में मिली। किसी की पुस्तक किसी प्रदेश में मिलने से वह तद्देशीय नहीं हो सकता। पटना पुष्पपुर कहकर प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध है। यहाँ बड़े-बड़े विद्वान् हुए हैं। विहार क्या समस्त भारत की राजधानी यह नगर बहुत दिनों तक थी शङ्करबालकृष्णदीक्षित ने दूसरे स्थान में लिखा है कि लोग इस कुसुमपुर को वर्तमान पटना कहते हैं। जब वायु पुराण का स्पष्ट वचन है कि गर्घी के दक्षिण तट पर बड़ा नगर कुसुम संज्ञक कुसुमपुर था तो यह नगर वर्तमान पटना ही है। उसी वायुपुराण में राजाओं के वर्णन करते-करते चन्द्रगुप्त का भी नाम आया है जिनके मन्त्री चाणक्य थे इससे स्पष्ट है कि वह कुसुमपुर पटना ही है।

आर्यभटीय ग्रन्थ की विशेषता

आर्यभट्ट के ग्रन्थ का नाम आर्यभटीय है क्योंकि आर्यभट्ट का लिखा हुआ है। आर्यभट्ट के नाम में आर्य शब्द आर्यावर्त देश को भी सूचित करता है। चूँकि उनके नाम में आर्य शब्द है इसलिये संभवतः आर्याछन्द में ही उन्होंने इस ग्रन्थ को लिखा है। यह ग्रन्थ छोटा है पिफर भी चार भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में ग्यारह श्लोक हैं और उनका नाम गीतिका पाद है। इस पाद में युगों वा प्रमाण, ग्रहभगणों का प्रमाण, पृथ्वी का चलन मन्दोच्च-शीघ्रोच्च भगण, आदि एक विचित्रा सघड्डेत में दिये गये हैं। अक्षरों तथा मात्राओं से अघड्ड बनाये गये हैं। अक्षरों के द्वारा अघड्डों को जताने का प्रकार यद्यपि सर्वप्रथम जैमिनीय सूत्रा के ज्योतिष के पफलित ग्रन्थ में देखने में आता है तथापि जैमिनि का सघड्डेत और आर्यभट्ट का सघड्डेत भिन्न-भिन्न है। जिस प्रकार अक्षरों में अघड्ड का ज्ञान आर्यभट्ट ने दिये उसी प्रकार ग्रीक लोग भी अक्षरों से अघड्ड का ज्ञान करते थे। आर्यभट्ट के समय में यवनों, ग्रीकद्ध का आना-जाना पटना में था। वराहमिहिर ने ज्योतिष जानने वाले यवनों की बड़ी प्रशंसा की है। उन्होंने बृहज्जातक ग्रन्थ में बहुत से यवन शब्दों का उपयोग किया है। वराहमिहिर का ज्योतिष सि(न्त ग्रन्थ प×चसि(न्तिका में पौलिश तथा रोमक सि(न्त ब्राह्मदेशीय मालूम पड़ते हैं। चूँकि आर्यभट्ट के समय के थोड़े ही पीछे वराहमिहिर हैं इसलिये आर्यभट्ट को भी यवनों से संपर्क हुआ हो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अगर अक्षर के अघड्ड का ज्ञान आर्यभट्ट ने यवनों से लिया तो स्वरो से उन्होंने जिन स्थानों या शून्यों का ज्ञान किया है उसका ज्ञान यवनों को भी रहता। परन्तु यवनों को ऐसा ज्ञान नहीं था। इसलिये इस रीति के निर्माण करने वाले आर्यभट्ट ही हैं। इस प्रकार के सघड्डेत में उन्होंने इन वस्तुओं को क्यों रखा इसके सम्बन्ध में अनेक विचार आते हैं। प्रथम कारण तो यह हो सकता है कि ऐसा विशिष्ट ज्ञान सर्वजनविदित न हो केवल सम्बन्धी तथा भक्त शिष्य ही इसको जान सके इस दृष्टि से नवीन सघड्डेत में इन भगणों की रक्षा की हो। क्योंकि शास्त्रा में लिखा हुआ है कि भवतों को शिष्यों को, बहुत दिन तक अपने पास रहने वालों को, गुणज्ञों को, भ्राता मित्रा, लडके इन्हीं सबों को यह गुप्त विद्या देनी चाहिये।³⁰ इस नियम के प्रतिकूल जो चलता है उसकी आयु तथा पुण्य का क्षय होता है।

³⁰ दिव्यं ज्ञानमीन्द्रियं यदपिभिर्ब्राह्मं वशिष्ठादिभिः

पारंपर्यवशाद्ब्रह्मस्यमवर्नी-नीतं प्रकाश्यं ततः ।

नैतद् द्वेषिकृतघ्नदुर्जनदुराचाराचिरावासिनां

मनुस्मृति में भी लिखा हुआ है कि विद्यादेवी ब्राह्मण के पास आई और उनसे कहा कि 'मैं तुम्हारी निधि हूँ। गुरु में छिद्रान्वेषण करने वाले को मुझे न दो, तभी मैं बलवती रहूँगी'³¹ इसलिये यह प्रचीन परिपाटी थी कि गुह्य विषय सब को न देना। यह बात केवल भारत में ही नहीं अन्य सभी देशों में थी। ग्रीस देश में जब रेखागणित की बड़ी उन्नति हो रही थी तब जिस घर में यह विद्या सिखलाई जाती थी उसके द्वार पर हुआ था कि इसमें अभिज्ञ लोग ही प्रवेश करें।

महान् सिकन्दर के बारे में यह बात कही जाती है कि जब वे एशिया महादेश में लड़ाई लड़ रहे थे तब उन्हें मालूम हुआ कि उनके गुरु अरिस्टोटल, अरस्तुद ने एक पुस्तक प्रकाशित कर दी। इस पर सिकन्दर ने अपने गुरु के पास एक पत्रा लिखा कि जिस विद्या के कारण वे लोग अपने को दूसरों से श्रेष्ठ समझते हैं, यदि वह ज्ञान सार्वजनिक हो जाय तो उन लोगों की क्या विशेषता रह जायगी? पत्रोत्तर में अरस्तु ने लिखा कि वे उस अपूर्व ज्ञान को प्रकाश में लाये भी हैं और नहीं भी लाये हैं। जिसका अर्थ था कि उसे प्रकाशित होने पर भी उनकी शिष्यपरम्परा ही उसको समझ सकेगी, सब नहीं समझ सकेंगे। इस प्रकार युरोप देश में भी यही परिपाटी थी कि अपूर्व वस्तु अपने ही यहाँ रहे। इस दृष्टि से आर्यभट ने एक विशेष सघट्टेत से उन भगणों की रक्षा की होगी। वर्तमान काल में भी उन्नतिशील देश अपनी वैज्ञानिक विधि एवं कार्यक्षेत्र को गुप्त रखने में तत्पर रहा है। दूसरी बात यह है कि बहुत अल्प शब्द में बहुत बड़ा काम हो जाता है। तीसरी बात यह है कि इतने अघट्टों को प्रकाशित करने का उपाय उस समय तक नहीं था। दश स्थान तक, वृन्द तक स्थान का ज्ञान होने पर भी 'अघट्टस्य वामा गतिः' रीति का उद्भावन नहीं हुआ था। यह इसलिये ज्ञात होता है कि आर्यभट्ट ने 20000, बीस हजारद्वय व्यास में परिधिमान 62832 को इस प्रकार से लिखा है कि एक सौ चार को आठ से गुण दें तथा बासठ हजार जोड़ दें, इतनी परिधि होती है। पीछे के लोग 'अघट्टस्य वामा गतिः' रीति का ज्ञान होने पर इस संख्या को द्विकान्यष्टयमर्तुमितः इतने में ही प्रकाशित किया है। इसलिये बड़ी-बड़ी संख्या को शब्द के द्वारा प्रकाशित करने में कठिनता थी। इसीलिये इस नवीन रीति की कल्पना हुई हो। अथवा जिस किसी कारण से इस नवीन सघट्टेत के द्वारा अघट्टों का प्रकाशन किया गया हो यह रीति एक अपूर्व वस्तु है। इसलिये संक्षेप में इसका विवरण इस प्रकार दिया जाता है-

वर्गाक्षराणि वर्गवर्तितोवर्गाक्षराणि कात्घमी यः।

खद्विनवके स्वरा नव वर्गवर्गो नवान्यवर्गो वा।³²

उपर्युक्त एक ही श्लोक में आर्यभट्ट ने सभी अघट्टों को गुथ दिया है। इस श्लोक का साधरण अर्थ तो यही है कि स्थान में वर्गाक्षर की, अवर्ग स्थान में अवर्गाक्षर को रखे। क से एकादि संख्या

स्यादायुः दुकृतशयो मुनिकृतां सीमामिमामुज्जतः।। सि(न्त सिरोगि, पृ. 281, श्लो. 9

³¹ विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवस्ति(श्चिख माम्।

असूयकाय मां मा दास्तथास्यां वीर्यवत्तमा।।;म.स्मृ. 2.114द्व

³² आ.रा., पृ. 1, श्लो. 2

जाने। घ और म के योग से य होता है। अटारह शून्य स्थान में नौ स्वरों को वर्ग तथा अवर्ग स्थान में रखें। इस प्रकार नौ स्वरों को वर्ग अवर्ग में रखने के अनन्तर पुनः वर्ग अवर्ग में उन्हीं स्वरों को रखें। विशेष अर्थ यह है कि व्याकरण शास्त्रा में पाँच वर्ग है जैसे क, ख, ग, घ, च, छ, ज, झ, ञ, चवर्ग, ट, ठ, ड, ढ, ण टवर्ग, त, थ, द, ध, न तवर्ग, प, फ, ब, भ, म पवर्ग है, और य, र, ल, व, श, ष, स, ह इन आठ अक्षरों को अवर्ग कहा है। स्वर यद्यपि 16 है तथापि केवल 'स्व स्वर का ही ग्रहण है जहाँ दीर्घ ही है जिनकी संख्या 9 है, जैसे अ, ई, उ,), लृ, ए, ऐ, ओ, औ। इन 9 स्वरों से शून्य स्थान का बोध होता है जब ये स्वर वर्गात्मक अक्षरों में मिलते हैं। वर्गाक्षरों में मिलकर वर्ग वाले शून्य अर्थात् शत, अयुत, प्रयुत, इत्यादि का बोध कराते हैं और अवर्गाक्षरों में मिलकर अवर्ग वाला शून्य जैसे दश, सहस्र, लक्ष, कोटि आदि शून्य स्थान का ज्ञान कराता है। उदाहरण के लिये क से संख्या का बोध, जैसे- क = 1, ख = 2, ग = 3, घ = 4, ङ = 5, च = 6, छ = 7, ज = 8, झ = 9, ञ = 10, ट = 11, ठ = 12, ड = 13, ढ = 14, ण = 15, त = 16, थ = 17, द = 18, ध = 19, न = 20, प = 21, फ = 22, ब = 23, भ = 24, म = 25, य = 30, र = 40, ल = 50, व = 60, श = 70, ष = 80, स = 90, ह = 100 । घ = 5, म = 25 दोनों के योग से अर्थात् 30 को य कहा है।

नौ स्वर वर्गाक्षर अवर्गाक्षर में मिलकर अटारहों स्थान का प्रदर्शन निम्नलिखित रूप से करते हैं-

$$क+अ = क = 1$$

$$क+इ = कि = 100$$

$$क+उ = कु = 10000$$

$$क+) = कृ = 1000000$$

$$क+लृ = क्लृ = 100000000$$

$$क+ए = के = 10000000000$$

$$क+ऐ = कै = 10000000000000$$

$$क+ओ = को = 100000000000000$$

$$क+औ = कौ = 1000000000000000$$

एवं

$$ख+अ = ख = 2$$

$$ख+इ = खि = 200$$

$$ख+उ = खु = 20000$$

इसी प्रकार आगे भी। अब अवर्ग अक्षरों को देखिये-

$$य+अ = य = 30$$

य+इ = यि = 3000
य+उ = यु = 300000
य+) = यू = 30000000 इत्यादि,
एवं
र+अ = र = 40
र+इ = रि = 4000
र+उ = रु = 400000 इत्यादि।

यहाँ "स्व दीर्घ स्वर के कारण कोई संख्याभेद नहीं होता है, जैसा कि = या की= 100 तथा संयुक्ताक्षर में प्रयुक्त स्वर दोनों व्यंजन का स्वर समझा जाता है, जैसे ख्यु के खु यु का बोध होता है।

आर्यभट ने व्यासपरिधि का संबन्ध जितना सूक्ष्म लिखा है यह देखकर आश्चर्य होता है। इतनी बात तो उन्होंने स्पष्ट लिखी है कि वृत्तपरिधि के षष्ठांश की पूर्णज्या वृत्त व्यासार्ध के तुल्य होती है। व्यासार्ध को छे से गुणा करने पर त्रिगुण व्यास होगा उससे वृत्तपरिधिमान बड़ा होगा क्योंकि पूर्णज्या से चापमान बड़ा होता है। पूर्णज्या सरल रेखा है और उसका चाप वक्र रेखा है जो सरल रेखा से अधिक है। तब उन्होंने परीक्षा करके देखा तो 20000 व्यास में 62824 परिधि प्राप्त किया। इस प्रकार इतने पहले इस सम्बन्ध को इतनी सूक्ष्मता के साथ कहा। त्रिभुज-चतुर्भुज के पफलानयन में एक आयाम रेखा लम्ब रेखा का साधन करके उसके बल से पफल साधन उन्होंने किया। पाटीगणित के एक प्रश्न के उत्तर करने में जो रीति है वह विना वर्गसमीकरण जाने हुए नहीं हो सकती है। इसलिये उन्हें वर्गसमीकरण का ज्ञान था ऐसा सि(होता है। कुट्टक गणित को आर्यभट ने कहा है जो विषय बहुत दिनों तक युरोप वालों को मालूम नहीं हुआ था।

भारत और युरोप देश के मध्य में अरब देश पड़ता है। अरबों ने दोनों देशवालों से बहुत कुछ सीखा तथा दोनों देशों के विद्वानों के साथ आदान-प्रदान किया। अर्थात् जो कुछ हिन्दुओं से सीखा उसे युरोपवालों को दिया तथा युरोपवालों से जो कुछ सीखा उसका कुछ अंश भारत को दिया। युक्लिड की रेखागणित पहले अरबी में अनूदित हुई। पीछे पण्डित जगन्नाथ ने शिवाजी के समय में संस्कृत में उसका अनुवाद किया। रेखागणित नाम पहले पहल उन्होंने ही रखा। इसके पहले प्रायः क्षेत्रामिति कहा जाता था।

ब्रह्मगुप्त का करण ग्रन्थ खण्डखाद्य का अनुवाद बड़े आदर से अरबी में कराया गया वहाँ से वह विद्या युरोप गई। अरब वाले स्वयं उसपर कुछ नवीन विषय नहीं सोचते केवल आदान-प्रदान करते थे। इस विषय की खोज की आवश्यकता है कि कौन से गणित भारत से अरबों के द्वारा युरोप गया। शून्यस्थान, दशमलव, बीजगणित तो भारत से ही गया यह उन विषयों के नाम से ही ज्ञात होता है जो अरबों ने इन विषयों के नाम रखे हैं।

आर्यभट के एक सौ वर्ष बाद ब्रह्मगुप्त हुए। उनका ग्रन्थ ब्राह्मस्फुट सि(न्त है। ब्राह्मस्फुट सि(न्त को देखने से मालूम होता है कि गणित तथा सि(न्त दोनों विषयों में वे आर्यभट से बहुत अधिक विषयों को लिखा है। तथापि विशेष धन्यवादार्ह आर्यभट ही हैं जिन्होंने सर्वप्रथम गणित ज्योतिष पर पुस्तक लिखी तथा अनेक नवीन विषयों को कहा सि(न्त में चाप और जीवा का सम्बन्ध सर्वत्रा आता है। आर्यभट ने एक पाद के न अंश के भीतर पौने चार-चार अंश का चौबीस विभाग करके उनकी ज्याओं को जानने को प्रकार कहा है तथा उनका मान लिख दिया है। यह बहुत बड़ा काम आरम्भ में ही विवेचित किया गया है।

पृथ्वी के अनेक मुख्य स्थानों का नाम, जैसे लघङ्गा, अवन्ती, मेरु, वड़वानल, यमकोटि, रोमक, सि(पुर दिया है तथा इन स्थानों में सूर्य के उदय-अस्त के बारे में कहा है। उज्जैन का अक्षांश भी 22°30' होता है, ऐसा कहा है। उज्जैन की चर्चा से तथा वहाँ की अक्षांश देने से ऐसा मालूम पड़ता है कि उनके समय में उज्जैन ज्योतिष गणना का मुख्य स्थल था।

इस प्रकार से आर्यभट के विषय में जो कहा जाय वह कम ही है। उनसे सम्ब(सम्पूर्ण विषयों को इस छोटे से निबन्ध में निब(करना असम्भव ही है। अतः अधिक नहीं कहते हुए मैं अपने वाणी को विराम देता हूँ।

उपनिषत्सु नैतिकमूल्यानि सच्चिदानन्द स्नेही³³

शोधसारः

ननु नानाविधुःखैः संपीडिताः स्वभविष्यज्ञातुकामा इष्टप्राप्त्यर्थमनिष्टपरिहारार्थमुद्यताः जनाः निःश्रेयसपथप्रदर्शकं प्रामाणिकं दर्शनशास्त्रमभिलषन्ति। यद्यपि आधुनिके यन्त्रप्रधनयुगे विविधैज्ञानिकयन्त्राणां विनियोगकारणेन मानवजीवने सौख्यं वर्धितं तथापि मानवस्य जीवने व्यक्तिगत- पारिवारिक-सामाजिक-दैहिकस्तरे नानाविधुःखानि सन्ति एव। सर्वेषामपि दुःखानामेकं प्रमुखं कारणमस्ति- 'नैतिकमूल्यानां' 'ऽसः'। अतः सद्गुणसंकटापने जीवने नैतिकमूल्यानां संरक्षणाय परिचर्चा अत्यावश्यकी वर्तते।

=====

इदानीं जिज्ञासा स्वाभाविकी यत् किन्नाम नैतिकमूल्यम्? नैतिकमूल्यानां काव्यकता? जीवने यदि नैतिकमाचरणं परिपालयामः चेत् को लाभः? नैतिकतायाः परित्यागेन अस्माकं लाभो वा हानिर्वा? किं नैतिकमूल्यानां सम्प्रति किमप्युपयोगो प्रयोजनमस्ति न वा? नैतिकतायाः परिपालनेन सुखप्राप्तिः कथम्? इत्यादयः बहवः प्रश्नाः मनसि समागच्छन्ति।

सर्वे स्वीकुर्वन्ति ऐहिलौकिके जीवनेऽस्ति धनस्य माहात्म्यं, परञ्च भारतीयदर्शनेषु उपनिषत्सु च यज्जीवनदर्शनं तत्तु धनस्य आध्यात्मिकज्ञानं प्रति न्यूनतां प्रकटयति। यथोक्तं कठोपनिषदि- 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो'। तथा च बृहदारण्यकोपनिषदि मैत्रेयी-याज्ञवल्क्यसंवादे अपि प्रतिपादितं यत् "अरे! मैत्रेयि! आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विज्ञातं भवति।"

³⁴ उक्तञ्च मुण्डकोपनिषदि-

"भिद्यते हृदयग्रन्थिद्विच्छद्यन्ते सर्वसंज्ञायाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥"³⁵

यानि कानि नैतिकमूल्यानि जीवने उपादेयानि तानि सर्वाणि एव उपनिषत्सु सन्निहितानि वर्तन्ते। वेदान्ता उपनिषद इत्यप्याख्यायन्ते। वस्तुतः वेदेषु ;उपनिषत्सुद्ध एव भारतीयदर्शनं बीजरूपं स्थितं वर्तते अर्थात् सम्पूर्णमपि भारतीयदर्शनमुपनिषत्सु एवान्तर्भूतमस्ति। तथा च

³³ ज.ना.ब्र.आ.सं. महाविद्यालय, लगमा, दरभंगा, बिहार

³⁴ बृहदारण्यकोपनिषदस्य, मैत्रेयी- याज्ञवल्क्यसंवादात्, वैदिकसूक्तसंग्रहः, हिन्दीव्याख्योपेता, गीताप्रेस गोरखपुरतः।

³⁵ मुण्डकोपनिषद् 2/2/8

उपनिषद्-दाब्दस्तु वेदान्तदाब्देन पराविद्यादाब्देन वाभिधीयते। वेदान्तसारकारः सदानन्द आह-"वेदान्तो नाम उपनिषत्प्रमाणम्"³⁶। उपनिषदेव प्रमाणम् उपनिषत्प्रमाणम्। उपनिषदो यत्र प्रमाणमिति वा। उपनिषच्छब्दस्य रहस्यमर्थः, आध्यात्मविद्यारहस्यस्य प्रतिपादकाः वेदभागा उपनिषदः कथ्यन्ते। उप-नि-उपसर्गपूर्वकात् विद्यारणगत्यवसादनार्थकात् ;षदलृद्ध सद् धतोः क्विपि उपनिषत् दाब्दो निष्पद्यते। उपनिषद् दाब्दस्य अर्थसामान्यं निरूपयन् आचार्यदाब्दकरः प्राह-"उपदाब्दो हि सामीप्यमाह। निदाब्दश्च निद्वयार्थः। तस्मादैकात्म्यं निद्वयचतम्। सा विद्या सहेतुं संसारं सादयतीत्युपनिषदुच्यते"³⁷। यद्यपि दाताधिका उपनिषद्ग्रन्थाः वर्तन्ते तथापि उपनिषदां विषये दक्षासंख्या अतीव महत्त्वपूर्णा अस्ति, यथोक्तम्-

"ईदा-केन-कठ-प्रद-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरः।

एतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं दक्षा ॥"³⁸

द्वेताद्वयतरोपनिषदेकाद्वयपि प्रसि(।। मुक्तिकोपनिषदि उपनिषदां संख्या 108 कथिता। तत्र 10 उपनिषदः)ग्वेदसम्ब(।, 19 उपनिषदः)दुक्लयजुर्वेदसम्ब(।, 32 उपनिषदः कृष्णयजुर्वेदसम्ब(।, 16 सामवेदसम्ब(।, 31 अथर्ववेदसम्ब(। सन्ति। कतिचनोपनिषदो गद्यात्मिकाः, कतिचन पद्यात्मिकाः, कतिचन गद्यपद्योभयात्मिकाश्च। उपनिषदां रचनाकालो भिन्नभिन्नः, परं प्रसि(। कतिचनोपनिषदो बु(कालात्प्राचीन एवेति अत्र नास्ति कश्चिद् सन्देहः। वेदविरोधिवार्ताकजैनबौ(दक्षिणेषुपि वैदिकतत्त्वानामेव प्रत्यक्षाप्रत्यक्षरूपेण प्रभावो परिदृश्यते। 'दृश्' धतोः ल्युट्प्रत्ययेन निष्पन्नोऽयं दर्शनशब्दः दृश्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या आत्मसाक्षात्कारसाधनं तत्त्वज्ञानकरणं वा भवतीति। यथोक्तं दर्शनस्य लक्षणं विषये-

"यदा[भ्युदैयिकं चैव नैश्रेयसिकमेव च।

सुखं साधयितुं मार्गं दर्शयेत्(। दर्शनम् ॥"

भारतीयदर्शनमुपनिषत्सु निहितं वर्तते। धर्मस्य मूलं दर्शनमस्ति। दर्शनस्य मूलं तत्त्वमीमांसा-ज्ञानमीमांसा-नीतिमीमांसाश्चेति मीमांसात्रयम्। तत्रापि संसारे नैतिकव्यवस्था-संचानलार्थं वैदिकं दर्शनमेव मार्गं प्रदर्शयति। तथा च उपनिषद्वा म्यस्य भारतीयदर्शनानामुपयोगिता च तेषां तत्त्वमीमांसायां, प्रमाणमीमांसायां, ज्ञानमीमांसायां, नीतिमीमांसायाञ्च सन्निहिताः वर्तन्ते। दर्शनमेव सर्वेषामस्माकं प्रश्नानां समुचितं युक्ति- युक्तञ्च समाधनं प्रदर्शयति। दर्शनैव मानवस्योत्पत्तिस्थितिलयविषयकानामनेकानां जिज्ञासामुत्तरं प्राप्यते। नीतिसम्पोषितेन दर्शनेनैव धर्मः निधयते। अनयैव धर्मस्य संरक्षणं च भवति। को धर्मः? किं

³⁶ वेदान्तसारः, आचार्यसदानन्दप्रणीतम्।

³⁷ दाब्दकरभाष्यं, ईदादि नो उपनिषद्, दाब्दकरभाष्यार्थहिन्दीव्याख्योपेता, गीताप्रेस गोरखपुरतः।

³⁸ संस्कृतसाहित्येतिहासः, पृ० सं० 12, उपनिषद्परिचयः, आचार्यरामचन्द्रमिश्रः, चौखम्बाविद्याभवनवाराणसीतः, प्रका० सं० 1998।

करणीयमिति? किन्तु वा? इत्येतादृशचिन्तनमननपफलस्वरूपमेव सकलमिदमुपनिषद्वा म्यं दर्शनशास्त्रञ्च । यथोक्तं महर्षियाज्ञवल्क्येन –

“आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य इति ।

आत्मनो वाऽरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विज्ञातम्भवति” 39 ।

महर्षियाज्ञवल्क्यस्येदं चिन्तनमेव भारतीयदर्शनस्य मूलाधरं वर्तते । पुरुषार्थचतुष्टयेषु अन्यतमस्य मोक्षस्य स्वरूपस्य ज्ञानं तस्य सिद्धिं दर्शनेनैव भवितुमर्हति । सा सिद्धिः श्रवण-मनन-निदिध्यासनेनैव सम्भवति । नैतिकजीवनदर्शनस्य मूलमुक्तमीक्षावास्त्योपनिषदि- ‘तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्वि(नम्’ 40 । उपनिषत्सु मीमांसादर्शने सिद्धानां वेदोक्तनीतीनां, धर्माणां, वैदिकवाक्यानाञ्च पूर्णतया वैज्ञानिकं युक्तियुक्तञ्च व्याख्यानं प्राप्यते । ‘धर्माख्यं विषयं वक्तुं मीमांसायाः प्रयोजनम्’ 41 इति सिद्धान्तं मन्यमानाः तैः तत्रैव मीमांसादर्शने ब्राह्मणग्रन्थेषु यज्ञसम्पादनाय प्रायोगिकं प्रक्रियात्मकं मार्गमपि प्रदर्शितम् । यथोक्तं भारतीयदर्शने-

“श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यः, मन्तव्यं च उपपत्तिभिः ।

मत्या च सततं ध्येयं, एते दर्शनहेतवः ।।”

‘सत्यमेव जयति नानृतम्’ ‘सर्वं भवन्तु सुखिनः.....’ इत्यादिषु उपनिषद्वाक्येषु नानाविधानि नैतिकमूल्यानि प्रसारितानि सन्ति, येषां परिपालनेन सर्वेषां जनानां कल्याणं भवितुं शक्नुवन्ति । तेषु गुणेषु वर्णगत-आश्रमीयधर्माणां च परिपालनं, सत्यभाषणम्, मनसा वाचा कर्मणा अहिंसाः, अस्तेयम्, अपरिग्रहः, शुचिता, बहिर्मलानामन्तःकरणानां मन-बुद्धि-अहंकाराणां च शुद्धिकरणं, सन्तोषः, इन्द्रियनिग्रहः, तपः, स्वाध्यायः, ईश्वरप्रणिधानं, गुरुणां मातृपितृणाञ्च सेवासुश्रूषा इत्यादयो बहवः सदगुणाः निरूपिताः सन्ति । यथा प्रतिपादितं केनोपनिषदि-“उपनिषदं भो ब्रूहीत्युत्तफा त उपनिषद् ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति । तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वा नि सत्यमायतनम् । यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गं लोके ज्येये प्रतिष्ठति प्रतिष्ठति ।” 42 तथा च सत्याचरणस्य माहात्म्यं मुण्डकोपनिषदि अप्युक्तम्-

“सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा

39 बृहदारण्यकोपनिषद् 2/4/5

40 ईक्षा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्वि(नम्) ।।

ईक्षावास्त्योपनिषदतः, मन्त्र सं० 1, ईक्षादि नो उपनिषद, द्वाङ्करभाष्यार्थहिन्दीव्याख्योपेता, गीताप्रेस गोरखपुरतः ।

41 श्लोकवार्तिकम्, श्लोकं 11 कुमारिलभट्टप्रणीतम् ।

42 केनोपनिषद् पृ. सं. 72,73, ईक्षादि नो उपनिषद, द्वाङ्करभाष्यार्थहिन्दीव्याख्योपेता, गीताप्रेस गोरखपुरतः ।

सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।

अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो

यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ।।” 43

लोके कथमाचरणीयमिति उपनिषद्सम्मतं भारतीयदर्शनमेव उपदिश्यते । कणाद-वचनानुसम्भवेन- ‘यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सः धर्मः’ इति सूत्रमवलम्ब्य धर्मानुकूलमार्गेणाचरेत् । जैनदर्शनस्य ‘सम्यक्ज्ञानदर्शनचरित्राणीति’ त्रीणि रत्नानि, ‘सत्याहिंसास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहश्चेति’ व्रतपञ्चकं, बौ(दर्शनस्याष्टाङ्गिकमार्गं 44 वा परिपालयेत् । नैतिकमूल्याधरितं जीवनदर्शनस्य प्रतिबिम्बस्वरूपं वैदिकदीक्षान्तोपदेक्षास्तूक्तं कृष्णयजुर्वेदीय-तैत्तिरीयोपनिषदि । तदित्थं-वेदमनूच्याचार्यो अन्तेवासिनमनुधास्ति-‘सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः.... मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवधानि कर्माणि । तानि सेवितव्यानि । नो इतराणि । यान्यस्माकं सुचरितानि । तानि त्वयोपास्यानि । नो इतराणि । 45 ” अत्र सर्वत्र नैतिकमूल्यानि प्रतिपादितानि सन्ति । भारतीयदर्शनस्य तत्त्वमीमांसा-ज्ञानमीमांसा-नीतिमीमांसानाञ्च मूलमुपनिषत्सु एव । उपनिषदो भारतीयजीवनदर्शनस्य ज्वलन्ति रत्नानि । महर्षिभिः यानि आध्यात्मिकतत्त्वानि जीवनदर्शनं च ज्ञानदृक्षा साक्षादकुर्वन् तानि सर्वाणि तत्त्वानि अत्र वर्णितानि । उपनिषदो सरससरलशैल्यां तत्त्वं ग्राहयन्ति । अतः तासां महत्त्वं लोकप्रियत्वं चानुदिनमवर्धत ।

सम्प्रति योगशास्त्रस्य उपयोगिता जीवने को न जानाति? मानवस्य शारीरिकमानसिकतापदामनाय योगशास्त्रमपेक्ष्यते । यादृक्षी उपयोगिता योगदर्शनस्य तादृक्षी न कस्यापि दर्शनस्य । सांख्ययोगदर्शनयोः मूलमपि उपनिषत्सु एव निहितं वर्तते । ‘योगद्विचत्तवृत्तिनिरोधः’ इति योगलक्षणमध्ययतेऽत्र- ‘यम’ 46-नियम’ 47-आसन-प्रणायाम-प्रत्याहार-धरणा-ध्यान-समाधयोश्चेति’ अष्टौ योगाङ्गानि 48 च । योगासनेन न केवलं शारीरिकमानसिकमारोग्यं लभ्यते वरन् योगाङ्गानुष्ठानादेव विवेकख्यातेः कैवल्यमपि सिध्यते । अतः योगदर्शने प्रतिपादितानां नैतिकमूल्यानामैहिलौकिकी पारलौकिकी चोपयोगिता सिद्भवति ।

43 मुण्डकोपनिषद्, पृ० सं० 268, ईक्षादि नो उपनिषद, द्वाङ्करभाष्यार्थहिन्दीव्याख्योपेता, गीताप्रेस गोरखपुरतः ।

44 ‘सम्यक् दृष्टि (ज्ञान)-संकल्प-वाक्-कर्मान्त (पंचक्षील)-आजीव-व्यायाम-स्मृति-समाधि सर्वदर्शनसंग्रहः

बौ(दर्शनभागात् पृ. सं. 81, चौ० वि० ३० वाराणसीतः

हिन्दीव्याख्योपेता, संस्करणम् 2004.

45 कृष्णयजुर्वेदीयतैत्तिरीयोपनिषदस्य शिक्षावल्यामेकादशोऽनुवाकः, वैदिकसूक्तसंग्रहः, हिन्दीव्याख्योपेता, गीताप्रेस गोरखपुरतः ।

46 ‘अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः’ योगसूत्रम् 2.30 पृ सं. 53 गीताप्रेस गोरखपुरतः प्रकाशितम् संस्करणम् ।

47 ‘शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः’ योगसूत्रम् 2.32 पृ सं. 55 गीताप्रेस गोरखपुरतः प्रकाशितम् संस्करणम् ।

48 योगसूत्रम् 2.29 पृ सं. 53 गीताप्रेस गोरखपुरतः प्रकाशितम् संस्करणम् ।

सत्य—अहिंसा—अस्तेय—ब्रह्मचर्य—अपरिग्रह—चेति यमानां, शौच—संतोष—तपः—स्वाध्याय— ईद्वरप्रणिधानानां नैतिकमूल्यानां योगसूत्रे प्रतिपादितानां नियमानां मूल्यानां वा परिपालनं न केवलं योगनीतिसम्मतं वर्तते वरन् जीवने समुन्नतेः मूलमपि वर्तते । यः सदा शुचितां परिपालयति स इहलोके न केवलं सापफल्यं प्राप्नोति वरन् तस्य प्रेत्यभावो न कदापि जायते । यथोक्तं कठोपनिषदि—

“यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।

स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥”⁴⁹

उपनिषत्सु एव तत्र प्रतिपादितानां नैतिकमूल्यानां, नैतिकजीवनस्य च सन्देशः प्राप्यते । तत्र काम—क्रोध—लोभ—अभिमानादिदोषान् त्यक्त्वा उपनिषद्ज्ञानसम्मतं सत्याचरणं, दानं, धर्मादयश्च सम्यक् कर्माणां पालनं कुर्वन्तु, यतो हि तत्र ज्ञानकर्ममार्गयोः समन्वयेनैव सुखसाधनत्वं सिध्यति । उक्तञ्च—‘अविद्याया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमद्नुते’ । भगवद्गीतायां यदुक्तं ज्ञानयोगं—कर्मयोगं—भक्तियोगञ्च, तदवदाचरणीयम् । भगवद्गीतायां मुख्यतः प्रतिपादितस्य निष्कामकर्मयोगस्य ईद्वोपनिषदि⁵⁰ प्राप्यते—‘कुर्वन्नेवेह कर्माणि, जिजीविषेच्छतं समाः’ । जीवनोपदेष्टाः कठोपनिषदि उक्तम् उद्बोधनरूपेण—‘उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधे’⁵¹ । ‘वसुधैव कुटुम्बकमिति’ मनसि निधय जनकल्याणाय प्रवर्तयेत् । यथोक्तं विद्वबन्तुत्वस्योपदेष्टा ईद्वोपनिषदि—

“यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपदयति ।

सर्वभूतेषु चात्मानं, ततो न विजुगुप्सते ॥”⁵²

उपनिषदो भारतीयजीवनदर्शनस्य ज्वलन्ति रत्नानि । महर्षिभिः यानि आध्यात्मिक—तत्त्वानि जीवनदर्शनं च ज्ञानदृष्ट्या साक्षादकुर्वन् तानि सर्वाणि तत्त्वानि नैतिकमूल्यानि च अत्र वर्णितानि । उपनिषदो सरससरलद्वैल्यां तत्त्वं ग्राहयन्ति । अतः तासां महत्त्वं लोकप्रियत्वं चानुदिनमवर्धत । आसां तत्त्वप्रकाशानदौली नैतिकं जीवनदर्शनञ्च यथा—

“आत्मानं रथिनं विािं धारीरं रथमेव तु ।

बुि तु सारथिं विाि मनः प्रग्रहमेव च ।

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।

⁴⁹ कठोपनिषद् पृ. सं. 126—127, ईद्वोपनिषद्, द्वाङ्करभाष्यार्थहिन्दीव्याख्योपेता, गीताप्रेस गोरखपुरतः ।

⁵⁰ ईद्वोपनिषद्भगात् मन्त्र सं 2, ईद्वोपनिषद्, द्वाङ्करभाष्यार्थहिन्दीव्याख्योपेता, गीताप्रेस गोरखपुरतः ।

⁵¹ कठोपनिषद्, मन्त्र सं 14, ईद्वोपनिषद्, द्वाङ्करभाष्यार्थहिन्दीव्याख्योपेता, गीताप्रेस गोरखपुरतः ।

⁵² ईद्वोपनिषद्भगात् मन्त्र सं 6, ईद्वोपनिषद्, द्वाङ्करभाष्यार्थहिन्दीव्याख्योपेता, गीताप्रेस गोरखपुरतः ।

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तव्याहुर्मनीषिणः ॥”⁵³

उपनिषदो हि नैतिकजीवनदर्शनस्य मार्गं प्रदर्शयति । एतदुद्भूता नानानिर्झरिण्यो नानाधास्त्र—धर्मधास्त्र—आचारधास्त्र—नीतिधास्त्रदि—रूपेण सकलमपि भुवनं भागीरथीप्रवाह इव पावयन्ति । प्रस्थानत्र याम् उपनिषद एव परमप्रमाणत्वेन संग्राह्याः यतो हि प्रस्थानत्र यामन्यद् द्वयं ग्रन्थरत्नं गीता ब्रह्मसूत्रं चेति द्वयमपि उपनिषद आश्रयमेव ।

उपनिषत्सु भारतीयजीवनदर्शनस्य प्रायः सकलोपि संग्रह समुपस्थाप्यते । उपनिषत्सु जीवनदर्शनस्य मूलमस्ति—विनद्वरे जगति एकं सत् अविनद्वरञ्च वस्तु ब्रह्मैव, तदेव जीवनेचेषितव्यम् । जीवनेस्मिन् यदि ब्रह्मज्ञानं न स्यात् तर्हि जीवनं निष्फलमेव स्यात् । तत्त्वज्ञानेन ब्रह्मदर्शनेन च जीवो मुक्तिं लभते । नैतिकजीवनदर्शनस्य मूलमुक्तमीद्वोपनिषदे—

“ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेफन भुञ्जीथा मा गृध् कस्य स्विनम् ॥”⁵⁴

भगवद्गीतायां मुख्यतः प्रतिपादितस्य निष्कामकर्मयोगस्य ईद्वोपनिषदि प्राप्यते—

“ कुर्वन्नेवेह कर्माणि, जिजीविषेच्छतं समाः ।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति, न कर्म लिप्यते नरे ॥”⁵⁵

उपनिषद्वा मये नैतिकमूल्यानां प्रतिपादनं सरलयाभििव्यक्त्या प्रश्नोत्तररूपेण आख्यायिका समन्वयेन च रूचिरां शैलीमाश्रित्य प्रतिपाद्यते । उपनिषद एता जीवने द्धान्ति प्रदायिकाः, आध्याधिनिरोधिकाः, मनसः द्धान्तिदाः, आत्मनद्वच प्रसादिकाः, अविद्यान्तमसविनाद्वात् ज्ञानप्रभाप्रसारिकाः सर्वधास्त्रमूर्धन्यत्वेन समादृताद्वच सन्तीति एतासां महत्त्वमक्षुण्णं निर्विवादञ्च । वस्तुतः ब्रह्मसाक्षात्कार एव उपनिषदां चरमं लक्ष्यम् । ब्रह्मसाक्षात्कारेणैव सर्वपापनिरोधे मोक्षावाप्तिद्वच । तद् व्यतिरिक्तं सर्वं नद्वरम् अपूर्णञ्च ।

अतः उपनिषत्सु प्रतिपादितं यत् त्रिषु धर्मार्थकामेषु परमपुरुषार्थाय मोक्षाय सामञ्जस्येन प्रवृत्तिर्भवितव्या यतो हि तया प्रवृत्त्या एव निःश्रेयसस्य प्राप्तिर्भवितुं शक्यते, न तु धनमात्रेण । यद्यपि रोगादिनानाविधदुःखेभ्यः धनमिन्द्रियभैषज्याद्युपायेन दुःखनिवृत्तिर्जायते परञ्च न सा ऐकान्तिकी आत्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिः । यथोक्तं सांख्यकारिकायाम्—

“दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ ।

⁵³ कठोपनिषद्, ईद्वोपनिषद्, द्वाङ्करभाष्यार्थहिन्दीव्याख्योपेता, गीताप्रेस गोरखपुरतः ।

⁵⁴ ईशावास्योपनिषद्, ईद्वोपनिषद्, द्वाङ्करभाष्यार्थहिन्दीव्याख्योपेता, गीताप्रेस गोरखपुरतः ।

⁵⁵ ईद्वोपनिषद्भगात् मन्त्र सं 2, ईद्वोपनिषद्, द्वाङ्करभाष्यार्थहिन्दीव्याख्योपेता, गीताप्रेस गोरखपुरतः ।

दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्तोऽभावात् ।।” 56

ननु कथं पारमार्थिकी दुःखनिवृत्तिः? उच्यते— सम्यक्दर्शनेन, तत्त्वज्ञानेन, विवेकज्ञानेन वा । किन्नाम दर्शनं येन दुःखेभ्य ऐकान्तिकी आत्यन्तिकी निवृत्तिर्भवेत्? दृश्यते प्रेक्षयते ज्ञायतेऽनेन इति दर्शनम् । तच्च दर्शनं निःश्रेयसाधकम् । स चापवर्गः भारतीयदर्शने द्विविधः 1. दुःखात्यन्तनिवृत्तिस्वरूपम् 57 2. आनन्दावाप्तिस्वरूपञ्च 58 । न्यायसांख्यादिदर्शनेषु आधिभौतिक-आधिदैविक-आध्यात्मिकानामिति जन्ममरणचक्रसन्तप्यमानानां जीवानां त्रिविधापेभ्य ऐकान्तिकी आत्यन्तिकीनिवृत्तिरेव मोक्षः । मीमांसावेदान्तादिदर्शनेषु दुःखनिवृत्तिरहितं निरतिदायानन्दस्वरूपः मोक्षः । मोक्षप्राप्त्यर्थं मार्गं तु प्रदर्शयति जैनदर्शनं— ‘सम्यक्दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गः’ 59 इति । स जितेन्द्रियः जीवनमुक्तः सम्यक्दर्शनसम्पन्नः निष्कामकर्मयोगीवत् भवति । अतः निष्कामकर्मयोगीवदाचरणीयम् । यथोक्तं मनुस्मृतौ—

“सम्यक्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्निब(यते ।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारे प्रतिपद्यते ।।” 60

अतः नैतिकजीवनदर्शनस्य लक्ष्यमस्ति पूर्णत्वस्य प्राप्तिर्मोक्षो वा । उक्तमपि ईक्षावास्योपनिषदि—

“ॐपूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावधिष्यते ।।
ॐशान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!” 61

सारांदातः वक्तुं शक्यते यदुपनिषत्सु समाजस्य संस्कृतेऽद्य समुत्थापनाय महती कामना दृश्यते । तेषु उपनिषत्सु समन्वयभावना प्रमुखा वर्तते । तत्र विविधानां विचाराणां समन्वयदृष्ट्यावलोक्यते । अतः उपनिषत्सु प्रतिपादितानां नैतिकमूल्यानां महती प्राप्तिः कता वर्तते । उपनिषत्सु एव विश्वदान्तिसन्देशः प्राप्यते । अयं दान्तिसन्देशः अस्माकं नैतिकजीवनदर्शनस्य मूलमन्त्रं विद्यते । तदुक्तम् कठोपनिषदि—

ॐ“ॐसह नावतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं
करवावहे । तेजसि नावधेतमस्तु
मा विद्विषावहे ।।

56 सांख्यकारिका, का.सं. 1

57 त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः सांख्यसूत्रम् ।

58 ‘सच्चिदानन्दं ब्रह्म’, ब्रह्मभावदृष्टं मोक्षः । वेदान्तदर्शनम् ।

59 तत्त्वार्थसूत्रम् सं. 01, उमास्वातिप्रणीतम् ।

60 मनुस्मृति 6.74

61 ईक्षावास्योपनिषदतः, दान्तिसन्देशः, ईक्षादि नौ उपनिषद्, द्वाङ्करभाष्यार्थहिन्दीव्याख्योपेता, गीताप्रेस गोरखपुरतः ।

वैयाकरणनये व्यापारसस्वरूपविमर्शः

रामबाबूपाण्डेयः

शोधसारः

‘प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि’ 62 इति गौतमसूत्रोक्तप्रमाणेषु वैयाकरणैः प्रधानतया शब्दस्य प्रमाणयमुरीक्रियते । तथा चोक्तं महाभाष्ये—‘शब्दप्रमाणका वयम् । यच्चब्द आह तदस्माकम्प्रमाणम्’ 63 तत्र ‘नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च, न सर्वाणीति गार्ग्यो वैयाकरणानां चैके’ 64 इति निरुक्तवचनात् ।

नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् 65

इति महाभाष्यवचनाच्चोणादिम्परित्यज्य सर्वेषामपि शब्दानां धातुप्रत्यय- निष्पन्नत्वात् को नाम धात्वर्थ इति जिज्ञासा कस्य हृदयाम्बुजे नोदेति? धात्वर्थविषये वैयाकरणानां मतद्वयं वर्तते, तत्र प्राचीनवैयाकरणाः धातोः पृथक्शक्तिं स्वीकुर्वन्ति ।

वैयाकरणभूषणसारस्यारम्भे कौण्डभट्टेन -

फलव्यापारयोर्धातुराश्रये तु तिङः स्मृताः ।

फले प्रधानं व्यापारस्तिङर्थस्तु विशेषणम् 66

अस्याः कारिकायाः अयमर्थः - फलव्यापारयोः सप्तम्यन्तं पदं, धातुरिति प्रथमान्तम् आश्रये इति सप्तम्यन्तं, तिङिति प्रथमान्तम्, स्मृताः इति प्रथमाबहुवचनम् फले इति सप्तम्यन्तं, प्रधानं प्रथमान्तम्, व्यापारः प्रथमान्तम्, तिङः अर्थः तिङर्थः प्रथमान्तम्, तु इति अव्ययं विशेषणमितिप्रथमान्तम् । स्मृताः इत्यस्य ‘धातुरित्यत्र वचनविपरिणामेनान्वयः’ 67 तेन फलव्यापारयोः धातुः स्मृतः तिङस्तु स्मृताः इति समन्वयः जायते । अत्र फलव्यापारयोरिति सप्तम्याः निरूपितत्वमर्थः । फलञ्च व्यापारश्च इति द्वन्द्वनिर्देशात् इतरेतरयोगे प्रतिपदार्थं प्रधान्यात् फलनिरूपिता शक्तिः व्यापारनिरूपिता च शक्तिः धातुनिष्ठा अवगम्यते । तेन खण्डशः शक्तिवादः प्रतीयते एवमेव आश्रयपदोत्तरसप्तम्या अपि निरूपितत्वमर्थः । अर्थात् आश्रयार्थनिरूपिता शक्तिः तिङ्क्षु वर्तते । अत्र वाचकता- शक्तिः आश्रयतासम्बन्धेन धातोः तिङ्क्षु च तिष्ठति । तेन फलव्यापारार्थनिरूपित- वाचकतावान् धातुः आश्रयार्थनिरूपितवाचकतावान् तिङः । इदमप्यवधेयं यत् फलव्यापारार्थनिरूपितशक्तिः स्वातन्त्र्येण पृथक्-पृथक् च वर्तते । एतत् प्राचामनुसन्धेन

62 गौतमन्यायसूत्रम् 1/1/3

63 महाभाष्यम् 1/1/1

64 निरुक्तम् 1/4/1

65 महाभाष्यम् 1/1/1

66 वै. भू. सा. का. 1

67 वै. भू. सा. धत्वर्थनिर्णयः पृ. सं. 13

नव्याः नागेशादयस्तु विशिष्टां शक्तिं स्वीकुर्वन्ति, अतः 'फलावच्छिन्नव्यापारे' 'व्यापारावच्छिन्नफले' च शक्तिं स्वीकुर्वन्ति।

वैयाकरणने व्यापारस्य धात्वर्थत्वे विवादाभावेऽपि व्यापारस्वरूपे मतभेदः दृश्यते। तत्र कौण्डभट्टः साध्यत्वेनाभिधीयमानायाः क्रियाया एव व्यापारत्वं स्वीकुर्वन्ति। भणितञ्च तैः 'व्यापारस्तु भावनाभिधा साध्यत्वेनाभिधीयमाना क्रिया'⁶⁸ अर्थात् साध्यत्वप्रकारकप्रतीतिविषयत्वमेव व्यापार इति कौण्डभट्टाशयः।

भर्तृहरिणाऽप्युक्तम् -

यावत् सिद्धमसिद्धं वा साध्यत्वेनाभिधीयते।

आश्रितक्रमरूपत्वात् सा क्रियेत्यभिधीयते।⁶⁹

एवञ्च साध्यस्यैव क्रियात्वे सा क्रिया द्विविधा सिद्धरूपा साध्यरूपा च। तत्र साध्यस्वभावाक्रिया तिङन्तस्थले, सिद्धस्वभावाक्रिया कृदन्तस्थले प्रतीयते। तथाचोक्तं कौण्डभट्टेन 'तथा च क्रियान्तराकांक्षानुत्थापकतावच्छेदकरूपत्वं साध्यत्वम्'⁷⁰। तथाहि 'पचति' 'पाकः' इत्यत्र धात्वर्थः विक्रित्यनकूलव्यापार- रूपोऽस्ति। किन्तु पाकः इत्यत्र एतदन्वयिनी क्रिया का इत्याकांक्षा भवति? किन्तु 'पचति' इत्यत्र क्रियान्तराकांक्षा न भवति। अतः 'पचति' इत्यत्र क्रियासाध्य- स्वभावैव। 'पचति' 'पाकः' इत्यत्र पच् धातुवाच्याक्रिया साध्यस्वभावा, पाकः इत्यत्र प्रत्ययघजादिवाच्या च सिद्धस्वभावा इति सिध्यति।

भर्तृहरिणाऽपि -

साध्यत्वेन क्रिया तत्र धातुरूपनिबन्धना।

सिद्धभावस्तु यस्तस्या स घजादिनिबन्धनः।⁷¹

व्यापारस्य स्वरूपं प्रतिपादयता प्रभाटीकाकारेण भणितम् - 'तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वम्'⁷² तथाहि पचति पाकः उभयत्रापि कर्तृजन्यत्वस्य कर्तृजन्यविक्रित्तिजनकत्वस्य च साध्यरूप क्रियायां सिद्धरूपक्रियायाञ्च सत्त्वेन लक्षणसमन्वयः।' यथा-पचादिधातोः फूत्कारादिव्यापाराः धात्वर्थविक्रित्तिजनकः धातुवाच्याश्च सन्ति। सर्वेषामेव तेषां व्यापाराणां धातुवाच्यत्वात्। उक्तञ्च -

'अयञ्च व्यापारः फूत्कारत्वाधःसन्तापनत्वयत्नत्वादितत्तद्रूपेणवाच्यः पचतीत्यादौ तत्प्रकारकबोधस्यानुभवसिद्धत्वात्'⁷³

ननु पच् धातोरनेकव्यापारवाचकत्वे नानाधर्मावच्छिन्नशक्यतानिरूपितैक-धर्मावच्छिन्नशक्ततावत्वरूपनानार्थतापत्तिः स्यादिति चेत्? अत्रोच्यते -

⁶⁸ वै. भू. सा. धत्वर्थनिर्णयः पृ. 12

⁶⁹ वा. प. 3/8/1

⁷⁰ वै. भू. सा. धत्वर्थनिर्णयः

⁷¹ वा. प. 3/8/48

⁷² वै. भू. सा. धत्वर्थनिर्णयः प्रभाटीका

⁷³ वै. भू. सा. धत्वर्थनिर्णयः

बुद्धिविशेषस्य तत्र शक्यतावच्छेदकस्वीकारेण न नानार्थतापत्तिः। यथा तद्यदित्यादिशब्दानां घटत्वपटत्वादिरूपेण नानार्थशक्ततया नानार्थकत्ववारणाय स्वीयविषयतावच्छेदकसम्बन्धेन वक्तुंबुद्धिविशेषोपलक्षिता ये घटत्वपटत्वादयो धर्मास्तद्वच्छिन्ने तदादीनां शक्तिस्वीकारेण न नानार्थतापत्तिः। तथाऽत्रापि फूत्कारादिसमूहविषयकमेकं बुद्धिविशेषं स्वीकृत्य तस्यैव फूत्कारादिनिष्ठ-शक्यतावच्छेदकस्वीकारेणादोषात् शक्यतावच्छेदकस्यैकत्वे नानार्थत्वाभावादिति। तस्मात् फूत्काराधःश्रयणाधिश्रयणादिसर्वेषां धातुवाच्यत्वात् धात्वर्थविक्रित्ति- जनकत्वाच्च व्यापारत्वमक्षुण्णमेव।

दर्पणटीकायां यदिदं व्यापारलक्षणं खण्डितम्, तनु न समीचीनं युक्तिविरुद्धत्वात्। तथा हि तत्रोक्तम्-अत एव न तज्जन्यत्वे सति तज्जन्य- जनकत्वरूपं तन्त्रान्तरप्रसिद्धं तत्। तदवच्छिन्नस्य धातुवाच्यत्वे साक्षाद्विक्रित्ति- जनकान्तिमाग्निसंयोगदशायामेव 'पचति' इति प्रयोगः स्यान्नत्वधिश्रयणादिदशायामपि तेषामन्तिमाग्निसंयोगेनान्यथासिद्धतया विक्रित्यन- जनकत्वादिति।'

अयमभिप्रायः - अन्तिमाग्निसंयोगेन पाकादीनामुत्पत्तेः तद् इतरेषां फूत्कारादीनां विक्रित्तिं प्रत्यन्यथासिद्धत्वेन विक्रित्यादिजनकत्वं न स्यात्। अतोऽभीष्टे व्यापारे व्यापारलक्षणावृत्तित्वेनाव्याप्तदोषः स्यादित्यर्थः। अतः अधिश्रणादिव्यापाराणां विक्रित्तिं प्रत्यन्यथासिद्धत्वेन जनकत्वाभावरिति खण्डनकारस्याशयः।

परञ्चात्रेदं बोध्यम् - प्रतिपादितेषु पञ्चस्वन्वथासिद्धेषु एकोऽप्यन्यथा-सिद्धप्रकारोऽधिश्रयणादीनां नास्ति।

अतो विक्रित्तिं प्रत्यधिश्रयणादीनामन्यथासिद्धत्वप्रतिपादनमन्यथासिद्धा- नभिज्ञतामेव प्रकटयति। अतः 'तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वरूपम्' इति लक्षणस्वीकारे न कश्चन दोषः।

व्यापारः कः इति जिज्ञासायां पेरिसूर्यनारायणशास्त्रिणः भूषणोक्त व्यापारमेव समर्थयन्ति। भणितञ्च तैः - भावनापरनामिका साध्यत्वेन रूपेण वाच्या या क्रिया स व्यापारः'⁷⁴ एतादृश लक्षणस्वीकारे न दोषः।

किञ्च यदि प्रयोजकत्वं जनकाजनकसाधारणं तदा तण्डुलक्रयणादेः अपि फलप्रयोजकक्रियात्वात्तद्दशायामपि देवदत्तादौ पचति इति प्रयोगापत्तिः। यत्तु 'बुद्धिविषयत्वोपलक्षिताधिश्रयणान्तेष्वपि शक्तिस्वीकारेण क्रयणादेः परम्परया फलजनकत्वेऽपि तदानौ पचतीति प्रयोगानापत्तेरिदमापादनमयुक्तम्'⁷⁵ तत्र पचादि- धातूनां एतद्दशायामधिश्रयणाद्यधःश्रयणान्तेष्वेव व्यापारेषु शक्तिस्वीकारे मानाभावात्। प्रयोजकत्वं यदि साक्षाद् जनकत्वं तदा चैत्रः पचति इत्यादौ कर्तृव्यापारस्य धात्वर्थत्वं न स्यात्। तस्य करणव्यापारद्वारैव फलजनकत्वात्। यद्यपि पञ्चोलिनः - 'व्यापारसामान्यलक्षणप्रसङ्गे धातुवाच्यव्यापारेऽपि लक्षणसत्त्वे दोषाभावादिति। तदपि न समीचीनम्। व्यापारसामान्यस्यात्र लक्ष्यत्वेनापक्रान्तत्वात्।

'फलव्यापारयोर्धातुः' इति कारिकायां धातुवाच्य व्यापारस्यैव लक्ष्यत्वेनाभिमतत्वात्। अतः 'तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वं व्यापारत्वम्' एवं च पचति पाकः इत्युभयत्रापि कर्तृजन्यत्वस्य

⁷⁴ वै. भू. सा. धत्वर्थनिर्णयः तत्त्वदर्शिनीटीका

⁷⁵ वै. भू. सा. धत्वर्थनिर्णयः प्रभाटीका

कर्तृजन्यविकलित्तिजनकत्वस्य च सत्वेन लक्षणसमन्वयः इति पञ्चोलिनामुक्तिः परास्तः। 'कथं पको भवति' 'पाको भविष्यति' इत्यादौ पाकस्यैव कर्तृत्वस्थले पाकक्रियायां लक्षणस्याऽव्यापेशः।

किञ्चैवं साक्षाद्विकलित्तिजनकान्तिमाग्नि संयोगदशायामेव 'पचति' इति प्रयोगः स्यात् न तु अधिश्रयणादिदशायामपि। तस्यायमाशयः - अन्तिमाग्नि संयोगेन पाकादीनामुत्पत्तेः तदतिरेषां फूत्कारदीनां विकलित्तिं प्रत्यन्यथासिद्धत्वेन विकलित्यादिजनकत्वं न स्यात्। अतः पञ्चोलि- द्वारोक्तव्यापारे व्यापारलक्षणावृत्तित्वेनाव्यापितदोषः स्यादित्यर्थः। अतः 'पदान्तर- समभिव्याहाराप्रयोज्य साध्यत्वप्रकारकप्रतीतिविषयत्वं व्यापारत्वम्' इति व्यापार लक्षणस्वीकारे नोक्त दोषः। जनकत्वेन प्रतीतित्वस्याधिःश्रयणादावपि सत्त्वात् दर्पणोक्तलक्षणस्वीकारेऽपि प्रतीतिविषयस्य कस्याप्यर्थस्याभावात्। अधिःश्रयणादीनामन्तिमाग्नि संयोगेनान्यथा सिद्धतया विकलित्यजनकत्वाच्च।⁷⁶ अतः दुर्निरूपैवायं व्यापारः इत्यताह कौण्डभट्टः - 'व्यापारस्तु भवनाभिधा साध्यत्वेन प्रतीयमानत्वमिति'⁷⁷ अत एव 'तिष्ठति' इत्यादौ प्रकृत्यर्थस्य साध्यत्वेनभानात् नाव्यापितः पुत्रीयति इत्यादौ शब्दशक्तिस्वभावात् प्रकृत्यर्थस्य साध्यत्वेन भानान्नाव्यापितः। अतएव 'व्याकरणस्य सूत्रं करोति' इत्यादौ वाक्यसम्बन्धेनान्वितस्यापि व्याकरणपदार्थस्य 'व्याकरणं सूत्रयति' इत्यादौ कर्मत्वम्। एवमपि 'हेतुमति च'⁷⁸ इति सूत्राभाष्यस्याशयः भट्टनागेशस्य व्यापारविषयकमतम्- फलव्यापारौ धातुवाच्यौ आख्यातार्थः कर्तृकर्मणि कर्तृप्रत्ययस्थले व्यापार- मुख्यविशेष्यकशाब्दबोधः कर्मप्रत्ययस्थले फलमुख्यविशेष्यकशाब्दबोधश्चेति नागेशमतम्।

त्र को नाम व्यापारः इति जिज्ञासायां नागेशेन भणितम्-'धात्वर्थ फलजनकत्वे सति धातुवाच्यत्वम्'⁷⁹

भर्तृहरिणाऽपि -

यावत् सिद्धमसिद्धं वा साध्यत्वेनाभिधीयते।

आश्रितक्रमरूपत्वात् सा क्रियेत्यभिधीयते।⁸⁰

अनेन लक्षणेन ज्ञायते यद् व्यापाररूपा क्रिया द्विविधा भवति सिद्धा साध्या च तत्र साध्यस्वभावाक्रिया तिष्ठन्तस्थले सिद्धस्वभावाक्रिया कृदन्तस्थले भवति यथा-पचतीत्यत्र साध्यस्वभावाक्रिया अत्र 'क्रियान्तराकांक्षानुत्थापकता- वच्छेदकरूपत्वं साध्यत्वमस्ति'⁸¹ अनुभव एव क्रियायाः साध्यत्वेन प्रमाणम्, 'पाकः' इत्यत्र क्रियान्तराकांक्षा भवति। अतः सिद्धा क्रिया किञ्च 'पाकः पचति' इत्यत्र पच् धातुवाच्या क्रिया साध्यस्वभावा घञादि प्रत्यय वाच्याक्रिया सिद्धस्वभावा इति सिध्यति।

⁷⁶ वै. भू. सा. धत्वर्थनिर्णयः दर्पणटीका

⁷⁷ वै. भू. सा. धत्वर्थनिर्णयः

⁷⁸ पा. सू. 3/1/26

⁷⁹ प. ल. म. धत्वर्थविचारः

⁸⁰ वा. प. क्रियासमुद्देशः

⁸¹ वै. भू. सा. धत्वर्थनिर्णयः, पृ. 17-18

नागेशमते - 'साध्यत्वं निष्पाद्यत्वमेव'⁸² सिद्धत्वञ्च 'घञादिवाच्यक्रिया सिद्धत्वम्' यद्यपि क्रियापि सूक्ष्मरूपेण सिद्धाः, तथापि शक्तिस्वभावात् स्थूलरूपेण साध्यत्वेनैव क्रियायाः प्रतीतिः।

नागेशाभिमतव्यापारलक्षणे यथा-'पचादि धातौ फूत्कारादिव्यापाराः धात्वर्थविकलित्तिजनकधातुवाच्याश्च सन्ति। सर्वेषामेव तेषां व्यापाराणां धातु- वाच्यत्वात्।' अयञ्च व्यापारः फूत्कारत्वाधः - सन्तापनत्वयत्नत्वादितत्तद्रूपेण वाच्यः, पचतीत्यादौ तत्प्रकारकबोधस्यानुभवसिद्धत्वात्।⁸³ न च पच् धातोरनेक- व्यापारवाचकत्वे नानाधर्मावच्छिन्नशक्त्यातिरूपितैकधर्मावच्छिन्नशक्ततावत्वरूप- नानार्थतापत्ति स्यादिति चेत् अत्रोच्यते - बुद्धिविशेषस्य तत्र शक्यतावच्छेदक- स्वीकारेण न नानार्थतापत्तिः। वाक्यपदीयेऽपि -

गुणभूतैरवयवैः समूहः क्रमजन्मनाम्।

बुद्ध्या प्रकल्पिताऽभेदः क्रियेति व्यपदिश्यते।⁸⁴

अयम्भावः - यथा सर्वनामशब्दानां 'घटमस्ति तमानय' इत्यादौ नाना- धर्मावच्छिन्नघटादीनां वाचकत्वेऽप्येकबुद्धिविशेषमवच्छेदकं स्वीकृत्य तत्तद्बुद्धि- विशेषोपलक्षिततत्तद्दर्मावच्छिन्ने तदादीनां शक्तिस्वीकारे नानार्थतापत्तिर्न भवति, एकस्यैव बुद्धिविशेषस्य शक्यतावच्छेदकत्वात्। तथैव पच् इत्यादि धातुष्वपि फूत्कारादिसमूहविषयकमेकं बुद्धिविशेषं स्वीकृत्य तस्यैव फूत्कारादि निष्ठशक्यता- वच्छेदकस्वीकारेण अदोषात्, शक्यतावच्छेदकस्यैकत्वे न नानार्थतापत्तिः। तस्मात् फूत्काराधिःश्रयणाधिःश्रयणादिसर्वेषां धातुवाच्यत्वात् धात्वर्थविकलित्तिजनकत्वाच्च व्यापारात्ममक्षुण्णमेव।

दर्पणटीकायां यदिदं व्यापारलक्षणं खण्डितं तत्तु न युक्तम्, युक्तिविरुद्धत्वात् तथाहि दर्पणटीकायामुक्तम् - 'अत एव न तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वरूपं तन्त्रान्तरप्रसिद्धं तत्। तद्वच्छिन्नस्य धातुवाच्यत्वे साक्षाद् विकलित्तिजनकान्तिमाग्नि संयोगदशायामेव 'पचति' इति प्रयोगः स्यात् न तु अधिश्रयणादिदशायामपि, तेषामन्तिमाग्नि संयोगेनान्यथासिद्धतया विकलित्य- जनकत्वात्'⁸⁵ इति।

तस्यायम्भावः - अन्तिमाग्नि संयोगेन पाकादीनामुत्पत्तेः तदतिरेषां फूत्कारादीनां विकलित्तिं प्रत्यन्यथासिद्धत्वेन विकलित्यादिजनकत्वं न स्यात्। अतः नागेशोक्त व्यापारलक्षणे व्यापारलक्षणावृत्तित्वेनाव्यापितदोषः स्यात्। एवञ्चाधिःश्रयणादि- व्यापाराणां विकलित्तिं प्रत्यन्यथासिद्धत्वेन जनकत्वाभाव इति दर्पणकारस्याशयः।

अन्यथासिद्धा इत्थं सोदाहरणं व्याख्याता विश्वनाथपञ्चानेन -

येन सह पूर्वभावो कारणमादाय वा यस्य।

अन्यं प्रति पूर्वभावे ज्ञाते यत्पूर्वभावविज्ञानम्।।

जनकं प्रति पूर्ववृत्तितामपरिज्ञाय न यस्य गृह्यते।

अतिरिक्तमथापि यद् भवेन्नियतावश्यकपूर्वभाविनः।।

⁸² प. ल. म. धत्वर्थविचारः पृ. 114

⁸³ वै. भू. सा. पृ. 19

⁸⁴ व. प. क्रियासमुद्देशः 4

⁸⁵ वै. भू. सा. दर्पणटीका पृ. 16

एते पञ्चान्यथासिद्धा दण्डत्वादिकमादिमम्।
घटादौ दण्डरूपादि द्वितीयमपि दर्शितम्॥
तृतीयं तु भवेद् व्योम कुलालजनकोऽपरः।
पञ्चमो रासभादिः स्यादेतेष्ववश्यकस्त्वसौ।⁸⁶

एतेषां पञ्चानां स्वरूपावलोकनेन इदमेवायाति यत् अन्यथासिद्धं तदेव भवति, येन विनाऽपि कार्यसिद्धिः स्यात्। उक्तान्यथासिद्धेषु एकोऽप्यन्यथासिद्ध- प्रकारो अधिश्रयणादीनां नास्ति। अधिश्रयणादिव्यापारं विना विक्रित्तिर्न सिध्यति, अतो न तेषां व्यापाराणां विक्रित्तिं प्रति अन्यथासिद्धत्वम्।

सिद्धान्ते तु तेषामन्यथासिद्धत्वाभावाद् विक्रित्तिं प्रति जनकत्वेन तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वमस्त्येवेति न कश्चनदोषः। तस्मात् नागेशमते - व्यापारत्वं तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वम्।

सिद्धान्ते तु कौण्डभट्टाभिमत व्यापारलक्षणं स्वीकरणीयं युक्तयुक्तत्वात् नागेशोक्त व्यापारलक्षणस्वीकारे तदुक्त सकर्मकत्वाकर्मकत्वस्वरूप विवेचनप्रसङ्गे 'क्वचिन्तु फलांशाभावादकर्मकत्वम्' यथाऽस्त्यादौ केवलं सत्तादिरेवार्थः फलांशस्य सूक्ष्मदृष्ट्याऽप्यप्रतीतेः।⁸⁷

एवञ्च फलाभावात् व्यापारमात्रमेवार्थः अस्त्यादीनाम् अतः शब्दशास्त्रीय कर्मसंज्ञकार्थान्वयर्थकत्वं सकर्मकत्वम् इति नागेशाशयः। तर्हि तद्वाच्ये व्यापारे तद्वाच्यफलजनकत्वं कथं स्यात्। फलांशाभावात् धातुवाच्यव्यापारे धातुवाच्य- फलजनकत्वाभावात्, धातुवाच्यत्वे सति धातुवाच्यफलजनकत्वं व्यापारे नास्ति अतः अव्याप्तिदोषः। अतोऽव्याप्तिदोषप्रस्तत्वात् नागेशाभिमतं व्यापारलक्षणं न युक्तमिति।

⁸⁶ न्यायसि(न्तमुक्तावली, का. 19-22

⁸⁷ प. ल. म. धत्वर्थविचारः, पृ. 46-48

दर्शनशास्त्रशिक्षणे ह्युरिस्टिक्-विधिः जितेन्द्रकुमाररायगुरुः⁸⁸

शोधसारः

आधुनिकयुगं विज्ञानस्य सूचनाप्रविधेश्च युगं वर्तते। विकासशीलयुगे अस्मिन् शिक्षणव्यवस्थायाः शैक्षिकसिद्धान्तस्य च प्राचीनशैली शिथिलायते। शिक्षणप्रक्रिया सैद्धान्तिकत्वेन व्यावहारिकत्वेन च कलाविज्ञानयोः समन्वितस्वरूपमिति मन्यते। अद्य बालकेन्द्रितशिक्षाप्रणाल्यां बालकस्य अभिरुचि-मनोवृत्ति-शारीरिक-मानसिकक्षमताधारेण शिक्षणकार्यं सम्पाद्यते। अनुदिनं विज्ञानस्य प्रविधेः च नवीनाविष्कारेण शिक्षाप्रक्रियां प्रभावशालीं कर्तुं तत्र अनुसन्धानं प्रचलति। तस्य परिणामः शिक्षाप्रक्रियायां विविधानां प्रविधीनां विधीनां यन्त्राणां प्रयोगो दृश्यते। येषां प्रयोगेण स्वल्पावधौ अधिकच्छात्रेभ्यः सरलतया सुगमतया च प्रभाविशिक्षणं कर्तुं शक्यते।

विषयप्रवेशः -

शिक्षणमेका सोद्देश्ययुक्ता सामाजिकी मनोवैज्ञानिकी अन्तःक्रियात्मिका च प्रक्रिया। या कक्षावातावरणे निर्दिष्टोद्देश्यानां प्राप्तये छात्रशिक्षकयोर्मध्ये प्रचलति। यस्याः मुख्यमुद्देश्यं छात्राणां व्यवहारपरिवर्तनम्। बालकेन्द्रितशिक्षणप्रक्रियायां शिक्षणं सुग्राह्यं रोचकं सरसञ्च कर्तुम् अध्यापकैः शिक्षणे ब्यूहाः, प्रविधयः, विधयः च व्यवहियन्ते। केचन अध्यापकाः भ्रमवशात् एतान् सर्वान् एकस्मिन् अर्थे व्यवहरन्ति। किन्तु एतेषु महान् भेदः वर्तते। यद्यपि स्वरूपदृष्ट्या एकस्य प्रयोगं विधित्वेन, ब्यूहत्वेन, प्रविधित्वेन वा कुर्वन्ति, तथापि उद्देश्याधारेण प्रयोगाधारेण च भेदं द्रष्टुं शक्यते। साम्प्रतम् एतेषां वास्तविकस्वरूपमिह प्रस्तूयते।

शिक्षणविधिः (Teaching Method) -

शिक्षणविधिः शिक्षणस्यैकं साधनं भवति, येन शिक्षकः स्वस्य पाठ्यविषयं प्रभावपूर्णतया रोचकतया पाठयति। कस्मिन् विषये कः विधिराश्रयणीयः इति पाठ्याशंस्य प्रकृतिमेव अवलम्बते। अतः विधेर्सम्बन्धः व्यक्तिविशेषेण भवति। शिक्षणविधौ पाठ्यवस्तु, प्रस्तुतीकरणञ्च प्रमुखं पक्षद्वयं भवति। शिक्षणविधेः निर्धारणं पाठ्यवस्तुनः प्रकृत्यनुसारमेव क्रियते। प्रस्तुतीकरणस्य प्रकाराः त्रयः सन्ति।

1. कथनविधयः यथा - व्याख्यानं, प्रश्नादयः।
2. दृश्यविधयः यथा - प्रदर्शनं, निरीक्षणादयः।
3. कार्यविधयः यथा - योजना, प्रयोगादयः।

शिक्षणव्यूहः (Teaching Strategy) -

व्यूहस्यार्थः युद्धकौशलं युद्धकला वा भवति। ब्यूहः एका विशिष्टकार्यप्रणाली वर्तते यस्याः प्रयोगः युद्धस्य सन्दर्भे एव भवति। किन्तु आधुनिकसन्दर्भे शिक्षणादिक्षेत्रेषु प्रयोगः क्रियते। शिक्षणव्यूहे उद्देश्यानां महत्त्वं भवति। शिक्षणव्यूहस्य चयनमुद्देश्यानामाधारेणैव भवति। शिक्षणव्यूहः द्विधा विभज्यते।

1. प्रभुत्ववादिशिक्षणव्यूहः
अत्र पारम्परिकशिक्षणपद्धतयः समायान्ति। व्याख्यानम्, प्रदर्शनम्, प्रबोधनवर्गः, अभिक्रमितानुदेशनम् च।
2. जनतान्त्रिकशिक्षणव्यूहः
अत्र आधुनिकशिक्षणपद्धतयः अन्तर्भवन्ति। योजना, अन्वेषणम्, वादविवादः, भूमिकानिर्वाहः, मस्तिष्कविप्लवः इत्यादयः।

शिक्षणयुक्तयः (Teaching Tactics) -

⁸⁸ एकलव्यपरिसरः, अगरतला

शिक्षणव्यूहस्य क्रियान्वयने अध्यापकैः याः क्रियाः क्रियन्ते ताः शिक्षणयुक्तयः इति प्रोच्यन्ते। युक्तीनां प्रयोगेण पाठः सरलः, स्पष्टः बोधगम्यश्च भवति। कक्षासम्प्रेषणदृढीकरणे युक्तयः साहाय्यं कुर्वन्ति। युक्तयः शाब्दिकाः अशाब्दिकाश्च भवन्ति। एतावतामुपयोगं कक्षापरिस्थित्यनुगुणं शिक्षकाः कुर्वन्ति। युक्तयः इत्थं भवन्ति -

1. वाञ्छितानुक्रियायै उद्दीपनस्य प्रसूतीकरणम्
2. समुचितानुक्रियायाः पुनर्बलनम्
3. अनुक्रियाणाम् अधिगमस्य क्रमे स्थापनम्
4. अधिगतानुक्रियाणाम् अभ्यासः
5. विभेदीकरणपरिस्थितेः उत्पादनम्
6. सामान्यीकरणम् इत्यादीनि।

शिक्षणप्रविधयः (Teaching Techniques) -

शिक्षणप्रविधयः तानि साधनानि वर्तन्ते येषां प्रयोगेण छात्राः पाठने रुचिं प्रदर्शयन्ति, पाठ्यसामग्रीं सुस्पष्टां भवति, विषयवस्तुं सरलतया सुगमतया च अधिगच्छन्ति चावस्तुतः शिक्षणप्रविधीनां प्रयोगः शिक्षणं रोचकं प्रभावपूर्णं च कर्तुं क्रियते। शिक्षणे नैके प्रविधयः सन्ति। व्याख्या-स्पष्टीकरण-विवरण-वर्णन-कथाकथन-उदाहरण-प्रश्नोत्तरप्रविधयः इति। उदाहरणार्थं व्याख्यानं शिक्षणविधिः भवति। किन्तु यदा व्याख्यानं कस्यापि विशिष्टोद्देश्यस्य प्राप्तये प्रयुज्यते तदा तत् शिक्षणव्यूहे अन्तर्भवति। शिक्षणविधौ प्रविधीनां साहाय्यं स्वीक्रियते। शिक्षणव्यूहौ शिक्षणयुक्तीनां प्रयोगः भवति। शिक्षणप्रविधीनां चयनं पाठ्यवस्तूनां प्रकृत्याधारितं भवति। युक्तीनां चयनम् अधिगमस्वरूपाधारितं भवति।

दर्शनम् -

दृश्यते अनेन इति दर्शनम् इति व्युत्पत्त्या दृशिर् प्रेक्षणे इत्यस्मात् धातोः ल्युट् प्रत्यये अनादेशे च दर्शनमिति रूपं सिद्ध्यति। प्राचीनकाले दर्शनशास्त्रम् अन्वीक्षिकी नाम्ना अपि व्यवहृतं भवति स्म। आन्वीक्षिकीपदस्य अर्थः अपि दर्शनम् अस्ति। उक्तञ्च -

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।

आश्रयः सर्वधर्मणां शास्त्रदान्त्रिक्षिकी मता।।

अतो अनेन स्पष्टं भवति यत् दर्शनशब्दस्य अर्थोऽवलोकनमस्ति, येन दृश्यते भिन्नजिज्ञासानां समाधानं वा भवति तदेव दर्शनम्। उपनिषत्सु प्रथमवारमेव दर्शनशब्दस्य प्रयोगः पारिभाषिके अर्थे सत्यस्य दर्शनाय अभवत्। यथा -

हिरण्यमेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।

अर्थात् ज्ञानचक्षुषा इदं चराचरम् याथातथ्येन दृश्यते विविच्यते समीक्ष्यते च तद् दर्शनम्। अतः समग्रमपि आध्यात्मिकाधिभौतिकञ्च विवेचनं यत्र भवति तद् दर्शनपदवाच्यं भवति। दर्शनस्योदयो वेदकालात् एवाजायत। दर्शनं द्विविधम् आस्तिकं नास्तिकञ्चेति। तत्र अस्ति ईश्वरे मतिर्यस्य सः आस्तिकः। नास्ति ईश्वरे मतिर्यस्य नास्तिकः। आस्तिकविचारकाणि वैदिकानि दर्शनानि, नास्तिकविचारकाणि अवैदिकानि दर्शनानि इति व्यवह्रियते।

दर्शनशास्त्रस्य प्रकाराः -

आस्तिकदर्शनानि षट्- न्यायदर्शनम्, वैशेषिकदर्शनम्, सांख्यदर्शनम्, योगदर्शनम्, पूर्वमीमांसादर्शनम्, उत्तरमीमांसादर्शनम् इति।

नास्तिकदर्शनानि त्रीणि- चार्वाकदर्शनम्, बौद्धदर्शनम्, जैनदर्शनम् इति।

दर्शनशिक्षणविधयः -

शिक्षणप्रक्रियायां शिक्षणस्य गुणवत्तासंवर्धनाय अनुदिनं नवीनविधयः आविष्कृताः भवन्ति। नैके विधयः शिक्षणे प्रयुज्यन्ते। दर्शनशास्त्रस्य शिक्षणाय पारम्परिकाधुनिकत्वेन नैके विधयः सन्ति। इह दर्शनशास्त्रशिक्षणस्य केचन विशिष्टविधयः उपस्थाप्यन्ते। विकासविधिः, इतिहासविधिः, समस्याविधिः, निर्दर्शनविधिः, ह्यूरिस्टिकविधिः, प्रायोजनविधिः च।

सन्तु विविधेषु विधिषु ह्यूरिस्टिकविधिः कश्चन अभिनवविधिः। गहनविषयस्य शिक्षणम् अनेन विधिना सरलतया कर्तुं शक्यते।

ह्यूरिस्टिकविधिः -

Herbert Spencer महोदयस्य सिद्धान्तमाधारीकृत्य Prof. H.E. Armstrong महोदयेन अमुं विधिं विज्ञानशिक्षणाय प्रत्यपादि। विज्ञानविषयं प्रयोगशालाः उपकरणानि च विना कथं शिक्षयेत् इति विषयं मनसि निधाय अमुं विधिं समदर्शत्। सम्प्रति अस्य विधेरुपयोगः न केवलं विज्ञानशिक्षणे अपितु भाषा-गणित-दर्शनादिषु विषयेषु भवति।

Heuristic इत्थं शब्दः Heurisco इति ग्रीकशब्दात् गृहीतो वर्तते। यस्यार्थः- अहमन्विष्यावगच्छामि इति। मितं भाषेत बहु कुर्वति इति सिद्धान्तमवलम्ब्य विधिरयं प्रवर्तते। अस्मिन् विधौ अध्यापकः छात्रान् अल्पमेव पाठयति। अधिकविषयान्वेषणाय प्रेरयति। अत्र छात्राः सक्रियाः भवन्ति। अध्यापकस्य स्थानं गौणं वर्तते। छात्राः स्वयमेव अन्वेषणं कृत्वा अधिगच्छन्ति। अध्यापकः व्यवस्थां व्यवस्थापयति। स तु केवलं मार्गदर्शकरूपेण कार्यं करोति। छात्रेभ्यः विषयान् न पाठ्यते किन्तु ते स्वीयसमस्यासमाधानमन्वेषणम् अन्येषां साहाय्येन विना स्वयमेव अन्वेषकाः भूत्वा कर्तुमर्हन्ति। छात्राः स्वानुभवेः ज्ञानं प्राप्नुवन्ति। एवञ्च अस्मिन् विधौ छात्राः समस्यां श्रुत्वा स्वयमेव समग्रं विषयं सङ्कलय्य परीक्ष्य नवीनज्ञानं प्राप्नुवन्ति। अत्र प्रक्रियायाः महत्त्वं वर्तते। अनया प्रक्रियायां छात्राणां सर्जनात्मकशक्तैः विकासो भवति।

ह्यूरिस्टिकविधिः सिद्धान्ताः -

साम्प्रतं छात्रकेन्द्रितशिक्षणाधिगमप्रक्रियायां नवीनविधयः मनोवैज्ञानिकसिद्धान्ताधारेण कल्पिताः भवन्ति। वस्तुतः नवविधीनामन्वेषणात्परं प्रयोगात्पूर्वं शिक्षाशास्त्रिणः सिद्धान्तान् उद्घोषयन्ति। आर्मस्टांग महोदयः आवश्यकतामभिलक्ष्य अस्य विधिः कांश्चन सिद्धान्तान् प्रतिपादितवान्। यद्यपि अस्य विधेः बहवः सिद्धान्ताः सन्ति किन्तु अत्र प्रमुखसिद्धान्ताः उपस्थाप्यन्ते। ते यथा -

1. क्रियाशीलसिद्धान्तः।
2. कार्यमुखादधिगमसिद्धान्तः।
3. रुचेः सिद्धान्तः।
4. प्रेरणासिद्धान्तः।
5. प्रयत्नसिद्धान्तः।
6. विकासात्मकसिद्धान्तः।

इत्थं विविधसिद्धान्तान् पुरस्कृत्य विधिरयं प्रवर्तते।

ह्यूरिस्टिकविधिः सोपानानि-

विधौ अधोलिखितपञ्च सोपानानि प्रयुज्यन्ते।

1. समस्यायाः प्रस्तावः -

कक्षायां छात्राणां पुरतः अध्यापकः कामपि पाठ्यसम्बद्धां समस्यां प्रस्तौति। छात्राः तां समस्यां ध्यानपूर्वकं शृण्वन्ति। अध्यापकः समस्यां तथा उपस्थापयति, येन छात्राः किमपि कर्तुं चिन्तयितुं च उत्काः भवन्ति। किञ्च तेषु तादृशी भावना भवति समस्येयम् उपयोगिनी पाठ्यसम्बद्धा च। दर्शनशास्त्रस्य पाठनसमये समस्या इत्थं उपस्थापयितुं शक्यते यथा - आस्तिकनास्तिकदर्शनयोर्मध्ये कः भेदः? कति गुणाः के च ते? प्रमाणानि कानि? शाखाधिकारी कः? इत्यादि। छात्राः समस्यां श्रुत्वा पाठ्यविषयान्वेषणे सम्प्रेरिताः भवन्ति।

2. तत्त्वानां निरीक्षणं, सारणीकरणम् -

सोपानेऽस्मिन् छात्राः स्वयं तत्त्वानामुपकरणान्वेषणं विधाय एकीकरणं कुर्वन्ति। प्रस्तुतसमस्या समाधानाय छात्राः विभिन्नदर्शनग्रन्थान् काव्यानि, नाटकानि, पद्यानि व्यावहारिकप्रयोगान् परिशील्य आस्तिक-नास्तिक-प्रमाण-द्रव्य-गुणांश्च सङ्कलनं कृत्वा सारणीं निर्मायन्ति।

3. परिकल्पना -

अत्र छात्राः स्वसमस्यायाः समाधानाय सङ्कलिततत्त्वानि सम्यक् विचार्य एकां परिकल्पनां निश्चिन्वन्ति। ग्रन्थानां काव्यानां चालोडने छात्राः षड् आस्तिकदर्शनानि त्रीणि नास्तिकदर्शनानि, नवद्रव्याणि, चतुर्विंशति गुणाः चेति परिकल्पनां प्रतिपादयन्ति।

4. परीक्षणम् -

छात्राः विविधैरुपायैः अध्यापकस्य साहाय्येन च स्वकीयां परिकल्पनां परीक्षन्ते। पदार्थाः, द्रव्याणि, गुणाः, आस्तिकनास्तिकदर्शनानि च परीक्ष्यन्ते।

5. नियमनिर्धारणम् -

अत्र परिकल्पनायाः परीक्षणात्परं छात्राः कमपि नियमं निर्धारयन्ति। छात्राः यदि परिकल्पना सार्थकी भवति तर्हि तां परिकल्पनां नियमत्वेन स्वीकुर्वन्ति। परीक्षणात्परं तत्र परिवर्तनस्यावश्यकता वर्तते तस्याः परिवर्तनं विधाय नवीननियमस्य निर्धारणं कर्तुं शक्नुवन्ति।

इत्थं च छात्राः नियम्य प्रकृतसमस्यायाः समाधानं विदधति। अत्र छात्राः सक्रियास्सन् सम्पूर्णं विषयं सुष्ठुः संकलय्य, परीक्ष्य नियम्य क्रमशः अवगच्छन्ति।

मूल्याङ्कनम् -

विज्ञानशिक्षणाय आविष्कृतः विधिरयं साम्प्रतं विविधविषयेषु प्रयोगो भवति। विधिरयं न कश्चन मौलिकविधिरिति आमनन्ति शिक्षाशास्त्रिणः। यदि समेषां विधीनां पर्यालोचनं क्रियते तर्हि समस्या-आगमनविधयोः समन्वयात्मकस्वरूपमिति वक्तुं शक्यते। विधिरयं समस्यां पुरस्कृत्य प्रवर्तते। एवञ्च आगमनविधौ यथा लक्ष्यमाश्रित्य लक्षणं प्रतिपाद्यते तथैव अस्मिन् विधौ समस्यां समाधातुं लक्ष्यमवलोक्य लक्षणत्वेन परिकल्प्यते। अतः नायं कश्चन विशिष्टः विधिः आगमनविधेरपेक्षया। तत्र उभयोर्मध्ये सामान्यो भेदो दृश्यते। आगमनविधौ उदाहरणान्युक्त्वा लक्षणानि प्रस्तूयन्ते, अस्मिन् समस्यामुक्त्वा लक्ष्ये तत्त्वानां निरीक्षणमिति विशिष्टं सोपानं वर्तते। किञ्च यथा समस्याविधौ समस्यायाः समाधानाय छात्राः प्रयतन्ते तथैव अत्रापि छात्राः समाधानान्वेषणाय यतन्ते। यद्यपि स्वरूपदृष्ट्या विधिरयं पूर्वोक्तं विधिवत् प्रतिभाति किन्तु अयं कश्चन स्वतन्त्रः विधिः। अस्य विधेः कश्चन पृथगात्मा नूनमस्त्येव। नवविधीनाम् आविष्कारे अवश्यं कानिचन प्रचलितत्त्वानि भवन्ति किन्तु तत्र मौलिकतायाः विवचनापेक्षया प्रक्रियायाः महत्त्वं वरीवर्ति। अत्र विधौ प्रक्रिया एव महत्त्वपूर्णा वर्तते। सा च प्रक्रिया छात्रेषु सर्वाङ्गीणविकासं साधयति।

उपसंहारः -

हरवटीपञ्चपदी, समस्यागमनविधयोः च समन्वयेनाविष्कृतः अयं विधिः। शिक्षाक्षेत्रे अस्य विधेः महत्त्वं निश्चप्रचम्। यदि अस्य विधेः गुणदोषाः पर्यालोच्यन्ते तर्हि गुणानामेवाधिक्यमवलोक्यते। किन्तु परीक्षाकेन्द्रितायाम् अस्यां शिक्षापद्धतौ अस्य विधेः प्रयोगः यथावत् कर्तुं न शक्यते। अस्य विधेः प्रयोगाय योग्याध्यापकानामुपकरणानाञ्च महती आवश्यकता वर्तते। तथापि अस्य विधेः गुणान् संवीक्ष्य अध्यापकानामुपकरणानाञ्च स्थितिमवलोक्य संस्कृतदर्शनशास्त्रस्य अध्ययनं क्रियते तर्हि शिक्षणं सुग्राह्यं रुचिकरं सार्थकञ्च भवतीति निर्विवादमेव।

Important dates for next Issue-

- ✓ DEADLINE FOR SUBMISSION- 01.07. 2018
- ✓ NOTIFICATION FOR ACCEPTANCE-15.07.2018
- ✓ INAUGURATION-01.08.2018



Send your paper



bipinkumarjhaofficialid@gmail.com

jahnavisanskritjournal@gmail.com